सत्यापन क्रमांक : RAJHIN/2015/60530

ओ३म्

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश

हिन्दी मासिक

वर्ष : १ अंक : ६ १ सितम्बर २०१५ जोधपुर (राज.) पृ.:३६ मूल्य १५० रु वार्षिक

ओ देव दयानन्द देख लिया तेरे कारण
जन जन को हम सबको मिला है यह नवजीवन
तुझे है सौ सौ वन्दन करें तेरा अभिनन्दन

महर्षि दयानन्द सरस्वती भवन न्यास
प्रगति की ओर

महर्षि दयानन्द सरस्वती उद्यान

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । -ऋग्वेद ९।६३।५

सबको श्रेष्ठ बनाओ

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश का मुख्य प्रयोजन

महर्षि दयानन्द सरस्वती के व्यक्तित्व, कृतित्व, व उनके द्वारा समस्त लिखित साहित्य तथा उनके सार्वभौमिक अद्वितीय कार्यों का प्रचार-प्रसार व व्यवहार में साकार करने के लिये कार्य करना

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर का मुखपत्र

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश

वर्ष : 1 अंक : ९

भादवा संवत् २०७२

सितम्बर २०१५

सृष्टि संवत् १९६०८५३११६

सम्पादक मण्डल :

पं. सत्यानन्दजी वेदवागीश, नोएड़ा

प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु, अबोहर

डॉ. धर्मवीर, अजमेर

डॉ. सुरेन्द्रकुमार, हरिद्वार

डॉ. वेदपालजी, मेरठ

पं. रामनारायण शास्त्री

आचार्या सूर्यादेवी चतुर्वेदा

विशेष : **महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश** में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं । उनसे सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है ।

कार्यवाहक सम्पादक :

दुर्गादास 'वैदिक'

99293-92335

mail i.d.: info@dayanandsmritinyas.org.

www.dayanadsmritinyas.org.

प्रकाशक :

महर्षि दयानन्द सरस्वती

स्मृति भवन न्यास, जोधपुर

वार्षिक शुल्क :150 रुपये

आजीवन शुल्क : 1100 रुपये (15 वर्ष)

SBBJ बैंक की खाता संख्या 51013406510

पायें, पढें, पचायें

	क्या	कहाँ
1	ईश्वर स्तुति-प्रार्थना	4
2	सम्पादकीय	5
3	वेद परिचय	7
4	वैदिक छह उपाङ्ग	10
5	उपासना	11
6	वेद नित्यत्वविचार	13
7	ब्रह्मचर्य का पोषक	16
8	त्रैतवाद	20
9	स्रोत का फैलाव.......	22
10	कृष्ण जीवन पर एक दृष्टि	25
11	स्वास्थ्य के तीन स्तम्भ	27
12	आर्यसमाज की देन.......	31
13	ऋषि स्मृति सम्मेलन सूचना	33

स्तुति-प्रार्थना

त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः, स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः ।

चकृषे भूमि प्रतिमानमोजसोऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम् ।।१३।। १।४।१४।२।।

व्याख्यान-हे परमैश्वर्यवन् परमात्मन् ! आकाश लोक के पार में तथा भीतर अपने ऐश्वर्य और बल से विराजमान हो के दुष्टों के मन को धर्षण तिरस्कार करते हुए सब जगत् तथा विशेष हम लोगों के "अवसे" सम्यक् रक्षण के लिए "त्वम्" आप सावधान हो रहे हो । इससे हम निर्भय हो के आनन्द कर रहे हैं । किञ्च "दिवम्" परमाकाश "भूमिम्" भूमि तथा "स्वः" सुख विशेष मध्यस्थ लोक इन सबों को अपने सामर्थ्य से ही रच के यथावत धारण कर रहे हो । "परिभूः एषि" सब के ऊपर वर्तमान और सबको प्राप्त हो रहे हो ! "आ दिवम्" द्योतनात्मक सूर्यादि लोक, "अपः" अन्तरिक्ष लोक और जल इन सब के प्रतिमान (परिमाण) कर्त्ता आप ही हो, तथा आप अपरिमेय हो । कृपा करके हम को अपना तथा सृष्टि का विज्ञान दीजिये ।।१३।।

वि जानीह्यार्यान् ये च दस्यवो, बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ।

शाकी भव यजमानस्य चोदिता, विश्वत्ता ते सधमादेषुचाकन ।। १४।। १।४।१०।३।।

व्याख्यान-हे यथायोग्य सब को जानने वाले ईश्वर! आप "आर्यान्" विद्या धर्म्मादि उत्कृष्ट स्वभावाचरणयुक्त आर्यों को जानो, "ये च दस्यवः" और जो नास्तिक, डाकू, चोर, विश्वासघाती, मूर्ख, विषयलम्पट, हिंसादिदोषयुक्त, उत्तमकर्म में विघ्न करने वाले स्वार्थी, स्वार्थसाधन में तत्पर, वेदविद्या-विरोधी, अनार्यमनुष्य "बर्हिष्मते" सर्वोपकारक यज्ञ के ध्वंसक हैं, इन सब दुष्टों को आप "रन्धय" समूलान विनाशय-मूलसहित नष्ट कर दीजिये । और "शासदव्रतान्" ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासादि धर्म्मानुष्ठान व्रत रहित वेद मार्गोच्छेदक अनाचारियों का यथायोग्य शासन करो (शीघ्र उन पर दण्ड निपातन करो), जिससे वे भी शिक्षायुक्त हो के शिष्ट हों, अथवा उनका प्राणान्त हो जाय, किंवा हमारे वश में ही रहें । "शाकी" तथा जीव को परम शक्तियुक्त शक्ति देने और उत्तम कामों में प्रेरणा करने वाले हो। आप हमारे दुष्ट कामों मे निरोधक हो । मैं भी "सधमादेषु" उत्कृष्ट स्थानों में निवास करता हुआ "विश्वेत्ता ते" तुम्हारी आज्ञानुकूल सब उत्तम कर्मों की की "चाकन" कामना करता हूँ, सो आप पूरी करें।।१४।।

-आर्याभिविनय से

सम्पादकीय

''नगाड़ा धर्म का बजता है आजमा ले जिसका जी चाहे।
बहे सत्यज्ञान की गंगा नहा ले जिसका जी चाहे ।।''

जैसा कि आप सब को विदित है कि युग प्रवर्त्तक महर्षि दयानंद सरस्वती जिनका जन्म गुजरात के टंकारा में संवत् 1881 फाल्गुन वदी 10 शनिवार मूल नक्षत्र में हुआ, ने 36 वर्ष की आयु में गुरुवर श्री दण्डी विरजा नंद सरस्वती द्वारास यह पूछने पर कि, ''क्या तुम गुरु दक्षिणा में मेरी माँगी वस्तु मुझे दे सकोगे ? तब दयानंद ने अपने गुरु के श्री चरणों में सिर रखकर विनय भरे शब्दों में कहा था- ''मेरा रोम-रोम आपके आदेशानुसार समर्पित है। आप निःसंकोच आदेश करिये। '' देश-दशा चिन्तित विरजानंद ने कहा- ''दयानंद ! देश में घोर अज्ञान फैला हुआ है। स्वार्थी लोग जनता को पर्थ भ्रष्ट कर रहे हैं।तुम इस व्यापक अन्धकार के निवारणार्थ सर्वात्मना प्रयत्न करो।''

दयानंद ने सहर्ष 'तथास्तु' कहकर **गुरु निर्देश को शिरोधार्य किया और सम्पूर्ण जीवन** देशोद्धार में होम दिया। **मोक्ष प्राप्ति** के स्थान में **देशोद्धार उनका मुख्य लक्ष्य** बन गया।

अपने गुरु की आज्ञा को अक्षरश: पालन करने व उसे क्रिया त्मक रूप देने के लिए सम्पूर्ण देश में भ्रमण करते हुए उन्होंने एक कुशल व कुशाग्र माली की तरह सर्वप्रथम जहाँ उन्होंने देश, समाज व राष्ट्र में उग आये झाड़-झंकार व खर-पतवार रूपी अनेकानेक मतमतान्तरों व अनार्ष ग्रंथों का कठोरता से मूलोच्छेद व खण्डन कर उन्हें उखाड़ फेंकना आरंभ किया जो देश, समाज व राष्ट्र का शारीरिक, आत्मिक व सामाजिक शोषण कर उन्हें नष्ट भ्रष्ट कर रहे थे। वहीं दूसरी ओर सार्वभौमिक सत्यरूपी खेत-खलिहान व बागीचों रूपी राष्ट्र में श्रेष्ठ उर्वरक वैदिक बीज का निरूपण कर कृणवन्तों विश्मार्यम् (सारे संसार को आर्य बनाओ) की भावना को सार्थक करते हुए एक ईश्वर, एक धर्म, एक कर्म, एक नाम, एक जाति रूपी सुदृढ़ धागे में बांधकर सम्पूर्ण मनुष्य जाति और विशेष रूप से भारतीयों का उद्धार करने का भारतीय प्रयत्न आरंभ किया।

महर्षि ने अपनी मातृभूमि जो लगभग 1000 वर्षों से विदेशियों से पदाक्रान्त हो रही थी, का उद्धार हेतु स्वदेश, स्वराज्य, स्वभाषा, स्वाधीन की भावना को उद्वेलित करने वे मृतप्राय राष्ट्र में जान फूँकने के लिए उन्होंने सम्पूर्ण देश में घूम-घूम कर विभिन्न मतावलम्बियों के साथ अनेकानेक शास्त्रार्थों की धूम मचा कर विशेष रूप से काशी-शास्त्रार्थ एवं क्रांतिकारी ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका आर्यभिविनय: आदि अनेकों अनेक ग्रन्थों की रचना कर मरते राष्ट्र में जान फूँक दी। वही दूसरी ओर 10 अप्रैल 1875 को मुम्बई में आर्य समाज की स्थापना कर उसके सार्वभौमिक दश नियमों द्वारा सारे संसार को यह संदेश दिया कि वेद ही सब सत्य विद्याओं का भण्डार है जिसका आदि मूल परमेश्वर है। ये वेद सम्पूर्ण मनुष्य जाति की धरोहर है और परमेश्वर की अनुपम सौगात। अत: सब मिलकर कल्याण को प्राप्त हो। उन्होंने जात-पात, छूआ-छूत, मूर्ति-पूजा, बाल-विवाह आदि का घोर विरोध किया व स्त्री-शिक्षा, अछूतोद्धार, विधवा-विवाह का प्रबल समर्थन किया। स्वामी जी के इन भागीरथ कार्यों के प्रतिफल स्वरूप स्वामीजी को नष्ट-भ्रष्ट करने के लगभग 17 वार प्रयास किये गये पर इसके विपरीत स्वामीजी को उनके

अपने दुश्मन जान से भी प्यारे थे। वे सर्वकल्याण की भावना से प्रेरित निरंतर अपने पद पर अडिग रूप से यथावत चलते रहे।

'यथा राजा तथा प्रजा' की भावना के व्यापक प्रभाव को अपनी प्रज्ञा से भारत के राजाओं को सत्य सनातन धर्मानुसार उनका चरित्र निर्माण कर धार्मिक व देशभक्त बनाने तथा विदेशियों से देश का उद्धार करने का संकल्प कर वे राजस्थान के उदयपुर व शाहपुरा के महाराणा सज्जनसिंह व महाराज नाहरसिंह को सच्चे क्षात्र-धर्म का पाठ पढ़ाया। जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह द्वितीय ने स्वामी जी के उपदेशों के समाचार से प्रभावित होकर उन्हें जोधपुर आने का लिखित अनुरोध किया। जिसके प्रतिफल स्वरूप स्वामी जी अजमेर से पाली होकर जोधपुर को प्रस्थान किया ओर **31 मई 1883** को प्रात: काल 3 मील पैदल चलकर जोधपुर में प्रवेश कर जोधपुर व राज्य को धन्य किया। स्वामी जी ने जोधपुर में साढ़े चार माह का प्रवास काल में सुधार की दृष्टि से अवैदिक मतमतान्तरों व अनार्ष ग्रन्थों व जीवन शैली का प्रचण्ड खण्डन कर सार्वभौमिक वैदिक सत्य सनातन धर्म का प्रचार किया। स्वामीजी के खण्डन से निराश हो स्थानीय मतावलंबियों ने स्वामीजी को मारने हेतु षड्यन्त्र करने लगे। अन्ततोगत्वा प्रत्यक्ष दृष्टि में स्थानीय व परोक्ष रूप में भारतीय ब्रिटिश शासन जो उन्हें बागी संन्यासी तथा आर्य समाज को बागी संस्था मानती थी एवं जिसका जोधपुर राज्य पर अप्रत्यक्ष रूप से शासन भी था, ने षड्यन्त्रपूर्वक जोधपुर में जोधपुर राज्य के एक गणमान्य अतिथि संन्यासी को जो उनका व सारे संसार का भल चाहता था, को **29 सितम्बर 1883** में न सिर्फ कालकूट जहर दिया बल्कि उन्हें ईलाज के नाम पर **16 दिनों तक उनके शरीर में जहर उतारा गया** जिसके प्रतिफल स्वरूप स्वामी जी इतने निर्बल हो गये कि **16 अक्टूबर** को आबू भेजने के लिए उन्हें कंधो पर उठाकर भवन से नीचे लाया गया। स्वामीजी को जोधपुर से आबू तथा अन्त में अजमेर लाया गया जहाँ **30 अक्टूबर 1983** को दीपावली के दिन सारे संसार के मनुष्यों के हृदय में वैदिक प्रकाश के दीपक जला कर यह कहते हुए विदा हो गये कि - हे ईश्वर ! तेरी इच्छा पूर्ण हो।

महर्षि दयानंद ने तो अपने गुरु का दिये वचन की अनुपालना करते हुए अपने राष्ट्र-कल्याण में दीपक की बाती की तरह अपने आप को पल-पल जलाकर अन्त में पूर्णतया जीवन को आहूत कर दिया , जो कलंक का टीका जोधपुर के भाल पर पिछले **132** वर्षों से लगा है और जो ऋण महर्षि के बलिदान से जोधपुर वासियों और विशेष रूप से आर्यों पर जो ऋण से उऋण होने, महर्षि दयानन्द स्मृति भवन न्यास हर वर्ष की तरह इस वर्ष भी स्मृति सम्मेलन का आयोजन किया है। जिसमें अनेकानेक उद्भट वैदिक विद्वान व भजनोपदेशक पधार रहे है। अत: आओ आप सभी आर्यजन राजस्थान ही नहीं, सारे भारत से ज्यादा से ज्यादा संख्या में पहुँच कर ता. 27 सितम्बर 2015 से 31 सितम्बर 2015 तक चार दिन तक होने वाले महर्षि दयानन्द स्मृति महोत्सव की शोभा बढ़ाये तथा हम सभी मिल के महर्षि दयानंद के बताये रास्ते पर चलकर ''जो बोले सो अभय-वैदिक धर्म की जय'' निश्चित कर सबके कल्याण के साधक व धारक बनकर कल्याण के मार्ग को प्रशस्त करें।

- दुर्गादास ''वैदिक''

वद, वेदाङ्ग, उपाङ्ग परिचय

सामवेद परिचय

जगत प्रसिद्ध चारों वेदों में तीसरा वेद सामवेद है साम का अर्थ है गीत या गायन प्रकार। साम का ज्ञाता उदगाता है । सामवेद में ऋचाओं में आश्रय पाये हुए साम का ही गान किया जाता है । इसलिये गायन विधा के मर्मों के आश्रय भूत मन्त्रों की संहिता सामसंहिता है ।

सामवेद के तीन भाग है :

(१) पूर्व अर्चिक

(२) उत्तर अर्चिक

(३) महानाम्नी

पूर्वार्चिक के चार भाग हैं:- आग्नेय काण्ड, ऐन्द्र काण्ड, अर्चिक पावमान काण्ड, अरण्यक काण्ड यह चारों काण्ड छः प्रपाठक में बंटे हुए हैं। प्राठकों में भी अर्द्ध प्रपाठक और दशतियाँ है। और मन्त्रों की संख्या ६४० है ।

उत्तरार्चिक में ९ प्रपाठक, २२ अर्द्ध प्रपाठक और ४०२ सूक्तियाँ हैं और मन्त्रों की संख्या १२२५ है। महानाम्नी अर्चिक में केवल १० मन्त्र हैं ।

इस प्रकार सामवेद के मन्त्रों का योग १८७५ है ।

छह वेदाङ्ग

सर्वज्ञानमय वेद को समझने के लिये वेद का यथावत अध्ययन अंङ्गो पाङ्ग सहित ही हो सकता है । महामुनि पतञ्जलि स्पष्ट लिखते हैं-

-ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्म षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च।

अर्थात्-शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त छन्द और ज्योतिष, ये छह वेदाङ्ग हैं।

अंग का अर्थ है लक्षण अथवा चिन्ह जिनके बिना समष्टि शरीर का ज्ञान पूर्ण रूप से नहीं हो सके वे अंग कहलाते हैं।

प्राणी शरीर वानस्पतिक लता वृक्ष के अंगों में भी यह भाव पाया जाता है । वेद के भी छह अंग हैं जिनके बिना वेद का यथावत् ज्ञान प्राप्त करना असम्भव सा है वेद के छह अंग ये हैं-

<u>शिक्षा</u>-सम्प्रति जिसे भाषा विज्ञान कहा जाता है, उसके अंग हैं उच्चारण, शब्दों का स्वरूप और

उसके अर्थ । भारतीय मनीषियों ने भाषा शास्त्र के तीनों अंगों के निरूपण के लिए क्रमश: शिक्षा, व्याकरण तथा निरुक्त शास्त्र का अन्वाख्यान किया है ।

वैदिक भाषा की एक विलक्षणता है जो संसार की अन्य किसी भाषा में नहीं देखी जाती है। वेद में जितने भी मन्त्र हैं, प्रत्येक मन्त्र में जितने पद हैं और प्रत्येक पद में जितने अक्षर हैं उनमें से प्रत्येक अक्षर की अपनी स्वतन्त्र जन्मभूमि धातु है। उसी के अनुसार उसका अपना स्वतन्त्र अर्थ है । यदि प्रत्येक शब्द के प्रत्येक अक्षर का अलग-अलग अर्थ समझ लिया जाये तो उन अर्थों को मिलाकर शब्द का और फिर शब्दसमुदाय से मिल कर बने अर्थ का जो भाव निकलेगा वह विलक्षण होगा। इसी के लिए **शिक्षा शास्त्र की रचना की** गई है।

वर्तमान में पाणिनि मुनिकृत शिक्षा सूत्रों के दो संस्करण उपलब्ध हैं महर्षि दयानन्द कृत वर्णोच्चारण शिक्षा तथा श्री युधिष्ठिर मीमांसाककृत शिक्षा सूत्राणि ।

<u>कल्प-</u> का **अर्थ है** बनाना, **सुधार संस्कार द्वारा निर्माण** करना । कायाकल्प आत्मकल्प, राष्ट्र कल्प आदि में यही भाव निहित है । आर्य जाति के सामाजिक राष्ट्रीय एवं वैयक्तिक जीवन को सर्वाङ्गपूर्ण बनाने के लिए ऋषियों ने गम्भीर चिन्तन के उपरान्त निर्धारित किया कि व्यष्टि से ही समष्टि अथवा समाज की रचना होती है इसी दृष्टि से वैदिक वाङ्मय में व्यक्ति के निर्माण के लिए जन्म से मृत्युपर्यन्त होने वाले सोलह संस्कारों की व्यवस्था की गई है । मुख्यत: श्रौत, गृह्य तथा धर्मसूत्र और स्मृति ग्रन्थ इस कल्पसंज्ञक वेदाङ्ग के अन्तर्गत हैं। वर्तमान काल में स्वामी दयानन्द सरस्वतीकृत संस्कारविधि भी इसी के अन्तर्गत है । अथर्व **वेद आर्य जाति की आदिकालीन कल्प संहिता** है ।

<u>व्याकरण :</u> **व्याकरण का शब्दार्थ है पृथक्करण** । इस प्रकार शब्दों की चारफाड़ करने में सहायक शास्त्र व्याकरण कहाता है । ऋग्वेद (१-१६४-४५) में कहा है- **चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिण:** अर्थात् वाणी चार प्रकार के पदों, नाम, आख्यात, उपसर्ग व निपात में परिमित अथवा सीमित है । उन चारों पदों को परिमार्जित बुद्धि रखने वाले मनीषी जानते हैं । अष्टाध्यायी के महाभाष्यकार पतञ्जलि ने ऋग्वेद (४-५८-३) में आये **चत्वारि श्रृङ्ग** से नाम आख्यात उपसर्ग और निपात को ही शब्दब्रह्म के श्रृङ्ग अर्थात् चोटियों के अर्थ में ग्रहण किया है । किसी भी **संज्ञा वा विशेषणवाची पद** को नाम कहते हैं । **क्रिया वाची या क्रिया विशेषण** रूप पदों को आख्यात कहते हैं।

<u>उपसर्ग :</u> उन **शब्द खंडों** को कहते हैं जो **नाम या आख्यात** के पहले लगाये जाते है, इन उपसर्गों का अपना विशेष अर्थ होता है ।

<u>निपात :</u> ऐसे **पदों को कहते हैं जो निर्विकार रह कर** अपना कार्य करते हैं। व्याकरण को वेद का अंङ्ग इसी लिए माना गया है, क्योंकि वह वैदिक शब्दार्थ जानने के लिए सृष्ट्युत्पत्ति के संदर्भ में

प्रकृति-पुरुष की भाँति भाषा के मूल तत्वों प्रकृति प्रत्यय को अलग अलग कर उसके अन्तस् में प्रवेश कराता है ।

निरुक्त : निरुक्त **वैदिक शब्दों** की ही व्याख्या करता है । इस लिए उसका **वेद से साक्षात सम्बन्ध** है और इसी कारण उसे वेद का निकटवर्ती अंङ्ग माना गया है । **ब्राह्मणग्रन्थों के पश्चात् वेदार्थ** के लिए उपलब्ध प्राचीनतम ग्रन्थ यास्काचार्य कृत निरुक्त ही है जिसकी रचना केवल वेदार्थ का परिज्ञान कराने के लिए ही की गई । **निरुक्त ब्राह्मण ग्रन्थ** का पूरक रूप है वस्तुत: निरुक्त यास्काचार्य द्वारा विरचित निघण्टु का भाष्य है, निघण्टु और निरुक्त दोनों का मूल वेद है ।

छन्द शास्त्र : यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः (ऋक् सर्वा .-२-६) इस आर्ष परिभाषा के अनुसार जिनमें **भिन्न-भिन्न अक्षरों** की एक निश्चित संख्या निर्धारित हो उसे **'छन्द'** कहते हैं। सृष्टि के आदि काल से ही **वाणी का व्यवहार दो प्रकार** से होता आया है- **गद्यमय और दूसरा पद्यमय।** जिनमें गिनती के कुछ **स्वर या व्यंजन** निर्धारित हैं उसे **पद्य** कहते हैं और **जहां ऐसा बन्धन नहीं** होता उसे **गद्य** कहते हैं। पद्य में जिन निश्चित वाक्यों का प्रयोग होता है उन्हें अक्षर गणना के आधार पर **श्लोक, वृत्त** आदि का नाम दे दिया जाता है **छन्दों की गिनती सात स्वरों के अनुपात** से सात ही है। कुछ और छन्द भी हैं, किन्तु वे सब इन्ही सात के अवान्तर भेद होने से इन्हीं के अन्तर्गत हैं। **वैदिक वाङ्मय** जहां **ज्ञानमय, कर्ममय, यज्ञमय** और **उपदेश मय** है, वहां रचना की दृष्टि से **छन्दोमय** है। वेदों के वाक्यार्थ- बोध के लिए **छन्दोज्ञान** की आवश्यकता के विषय में **कात्यायन ने ऋक्सर्वानुक्रमणी** (परि. 1-4) में लिखा है- **छन्दोज्ञान से वेदार्थज्ञान** में प्रौढता आती है, क्योंकि **वाक्यार्थ बोध** में इससे पर्याप्त सहायता मिलती है। इस प्रकार वेदों का यथार्थज्ञान प्राप्त करने के लिए छन्द: शास्त्र का अध्ययन भी उतना ही आवश्यक है, जितना अन्य **वेदाङ्गों का।**

ज्योतिष- आकाशागत **सूर्यमण्डल से सम्बन्ध** रखने वाले **नक्षत्र विज्ञान को ज्योतिष** कहते हैं। यही ज्योतिष शास्त्र, ज्योतिर्विज्ञान या नक्षत्रविज्ञान **वेद का छठा अंङ्ग** है। अथर्ववेद (12-3-20) तीन लोकों का निर्देष करते हुए कहता है कि ब्रह्म अर्थात् वेद का जानने वाला ज्ञानी पुरुष द्यौ, पृथिवी, अन्तरिक्ष- इन **तीनों लोकों का ज्ञान** प्राप्त कर लेता है। ज्योतिष शास्त्र के पारंगत विद्वान् भास्कराचार्य ने सिद्धान्तशिरोमणि में लिखा है कि **वेद यज्ञीय कामों के प्रवर्तक** हैं। यह उनमें **काल के आश्रय** कहे गये हैं। **ज्योतिष**-शास्त्र से काल का ज्ञान ठीक ठीक होता है। जितने भी श्रेष्ठ कर्म हैं वे सभी वेद में यज्ञ नाम से अभिहित हैं। प्रत्येक **यज्ञीय कर्म** काल की किसी न किसी सन्धि में सम्पन्न होता है। काल का ज्ञान पृथिवी से **सम्पर्क रखने वाले** सूर्य, चन्द्रमा आदि की **गति** पर निर्भर है। इसीलिए वैदिक ऋषियों ने पार्थिव पदार्थों के ज्ञान के साथ-साथ **नक्षत्रविद्या** का **सम्पादन** भी आवश्यकता समझा ।

वैदिक छह उपाङ्ग

मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, सांख्य, योग और वेदान्त यह छह उपाङ्ग हैं। इन्हें दर्शन तथा शास्त्र भी कहते हैं। इन **दर्शनों के रचयिता क्रमश: जैमिनि, कणाद, गौतम, कपिल, पतञ्जलि तथा व्यास** हैं।

1. न्याय दर्शन- न्याय दर्शन के प्रर्वत्तक महर्षि गौतम अपने दर्शन के प्रारम्भिक सूत्र में कहते हैं कि - प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, द्रष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल , जाति तथा निग्रह स्थान। **इस षोडश सत पदार्थों के तत्त्वज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति** होती है।

2.सांख्य दर्शन- सांख्य दर्शन के **प्रवर्त्तक कपिल** कहते हैं- 'अथ त्रिविधदु:खात्यन्त निवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थ: इस **दर्शन का प्रतिपाद्य विषय पच्चीस तत्वों का समुदाय** है। इसमें चौबीस **जड़ तत्त्व** हैं। जो **इस प्रकार हैं:**

(1) प्रकृति अर्थात् सत्त्व-रजस-तमस् की साम्यावस्था,

(2) महत् अर्थात् बुद्धितत्त्व

(3) अहंकार

(4) पांच तन्मात्रायें अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, (9-19) ग्यारह इन्द्रियां अर्थात् मन (आन्तर इन्द्रियां) श्रोत- त्वक्, चक्षु-रसन-घ्राण (ज्ञानेन्द्रियाँ वाक- पाणि-पाद-पायु-उपस्थ(कर्मेन्द्रियों) (20-24) पांच स्थूल भूत अर्थात्, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु-आकाश (25) **चेतन तत्त्व 'पुरुष' (आत्मा व परमात्मा)**

3.वेदान्त दर्शन- के प्रवर्त्तक **महर्षि व्यास** अपने दर्शन का प्रारम्भ इस सूत्र से करते हैं, "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा"। इस दर्शन का **प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म** है जो कि **जन्म आदि** अर्थात् **सृष्टि, धारण एवं प्रलय** का आदि **कारण और दिव्य ज्ञान** का स्रोत है।

4. पूर्व-मीमांसा दर्शन- के प्रवर्त्तक **महर्षि जैमिनि** कहते हैं-**''अथातो धर्म जिज्ञासा''**। इस दर्शन में विधि-विधान, **कर्मकाण्ड** तथा **धर्मानुष्ठान** के उपदेश हैं।

5. योग दर्शन- के प्रवर्त्तक महर्षि **पतञ्जलि** कहते हैं ''अथयोगानुशासनम्। इस दर्शन में योग के आठ अंग-(**यम, नियम,** आसन, **प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि**) को समझाया गया है।

"उपासना"

–दुर्गादास "वैदिक"

ईश्वर में परम अनन्य अनुराग भक्ति है ।।१।।

वृहदारण्यक में लिखा है–वह परमात्मा ही चित्तवृति लगा कर ईक्षण करने योग्य है वही श्रुतिवाक्यों से श्रवण युक्तियों से मनन और चित्त को एकाग्र कर बार–2 ध्यान करने योग्य है । संसारिक सुख भोग से विरक्त हो जब मनुष्य इस प्रकार निश्चय कर उसी को पाने में लग जाता है तब वह मानो परमेश्वर का प्रेमी बन जाता है । प्रेम की यह पराकाष्ठा ही भक्ति है ।

प्रश्न–इस भक्ति का स्वरूप क्या है ?

उत्तर– वह भक्ति अर्थात् उपसना रूप होती है ।

प्रश्न–उपासना किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिससे परमात्मा के पास ठहरा जाये, उसे उपासना कहते हैं ।

प्रश्न–तो क्या परमात्मा दूर है जो उसका सामीप्य पाने के लिए प्रयत्न अपेक्षित हो ?

उत्तर–नहीं परमात्मा सबके भीतर–बाहर प्राणिमात्र के आत्मा में विद्यमान है वह कब किससे दूर हो सकता है । वस्तुतः अज्ञान के कारण पास पड़ी वस्तु भी दूर हो जाती है । ईश्वर अज्ञानियों से दूर और ज्ञानियों के समीप रहता है । इसी प्रकार जिससे हमारा कभी परिचय नहीं हुआ वह साथ में रहता हुआ भी हमसे दूर है ।

प्रश्न–परमेश्वर किसको मिलता है ?

उत्तर–उपनिषद् के अनुसार परमेश्वर उसी को मिलता है जिसका वह स्वयं वरण करता है ।

प्रश्न–परमेश्वर किसका वरण करता है ?

उत्तर–परमेश्वर उसी का वरण करता है जो उसके समानधर्मा है । अर्थात् जिस अंश में किसी के गुण कर्म, स्वभाव परमेश्वर के अनुरूप होते हैं उसी अंश में उसे उसका सामीप्य प्राप्त होता है ।

प्रश्न–ईश्वर का सामीप्य कैसे प्राप्त हो सकता है ?

उत्तर–भक्ति या उपासना अनुष्ठान साध्य होने से योग से प्राप्त हो सकता है ।

प्रश्न–योग के लक्षण क्या हैं, एवं किसे कहते हैं ?

उत्तर–चित्तवृत्ति के निरोध को योग कहते हैं।

प्रश्न–चित्तवृत्ति के निरोध का क्या अर्थ है ?

उत्तर–वृत्तिनिरोध का अर्थ है किसी एक इच्छित विषय में चित्त को एक स्थान पर केन्द्रित करना योग कहाता है ।

प्रश्न–चित्त में स्थैर्यशक्ति कैसे उत्पन्न होती है ?

उत्तर–ज्ञान, वैराग्य व अभ्यास से ।

प्रश्न–चित्त शब्द का क्या अर्थ है तथा वह किसका परिणाम है और वह कैसा है ?

उत्तर–'चित्त' शब्द का अर्थ यहां अन्तः करण है और सत्त्वरजस् तमस् रूप प्रकृति का परिणाम होने से त्रिगुणात्मक है ।

प्रश्न–वृत्ति किसे कहते हैं तथा ये कितनी प्रकार की होती हैं ?

उत्तर–इस बाह्ययाभ्यन्तर व्यापार को वृत्ति कहते हैं । त्रिगुणात्मक अन्तःकरण का परिणाम होने से ये ती।। प्रकार की होती है चित्त इनमें से किसी न किसी वृत्ति से व्याप्त रहता है । इन वृत्तियों का निरोध होना योग है ।

प्रश्न–एकाग्र किसे कहते है ?

उत्तर– जिस अवस्था में राजस और तामस वृत्तियों का निरोध हो जाने पर चित्त, इन्द्रियों के द्वारा बाह्य विषयों में प्रवृत्त न हो कर एक मात्र अध्यात्म के चिन्तन में निमग्न रहता है उस अवस्था का नाम 'एकाग्रय'है ।

प्रश्न–चित्त की निरुद्ध अवस्था क्या है और ये कब होती है ?

उत्तर–एकाग्र अवस्था में पूर्वानुभूत विषयों के संस्कार अवश्य बने रहते हैं और कभी 2 एकाग्र अवस्था में विघ्न भी उपस्थित कर देते हैं । जब चित्त संस्कारों के विद्यमान रहते हुए भी उनको उद्‌बुद्ध करने में अ समर्थ हो जाता है और सात्त्विक वृत्ति का लोप हो जाने पर निरावलम्ब हुआ क्लेशकर्मादि वासनाओं के सहित अपने कारण प्रकृति में लीन हो जाता है और जीवात्मा अपने चैतन्य स्वरूप से परमात्मा के स्वरूप आनन्द को अनुभव करता है वह चित्त की निरुद्ध अवस्था कहाती है । आत्मबोध के अलावा इस अवस्था में अन्य किसी का ज्ञान न रहने से इस अवस्था को असम्प्रज्ञात कहते हैं।

प्रश्न–चित्त वृत्तियों के निरोध का उपाय क्या है ?

उत्तर–वैराग्य और अभ्यास के द्वारा उन वृत्तियों का निरोध होता है । वैराग्यं और अभ्यास दोनों का समुच्चय अर्थात पारस्परिक सहयोग अपेक्षित है । एक दूसरे के पूरक होकर दोनों मिल कर निरोध का सम्पादन करते हैं।

विषयों के स्रोत पर वैराग्य का बांध लगाकर पाप धारा को सुखा दिया जाता है । तदन्तर विवेक दर्शन के अभ्यास रूपी फावड़े से अध्यात्म मार्ग को गहरा करके समस्थ चित्तवृत्तियों के प्रवाह को उसमें डाल दिया जाता है और इस प्रकार कल्याण मार्ग का पथिक अपने अभिष्ट को प्राप्त कर लेता है ।

प्रश्न–यह विवेक मार्ग तो कण्टकाकीर्ण, बड़ा ही दुर्गमता से परिपूर्ण है ।

उत्तर– हाँ, मन बड़ा ही चंचल, हठीला, बलवान और दृढ़ है । वायु के समान इसे वश में करना दुष्कर है । परन्तु अभ्यास और वैराग्य से वश में किया जा सकता है । जो बात पहले कठिन देख पड़ती है बार-2 के अभ्यास से अन्त में वह सिद्ध हो जाती है ।

वेद नित्यत्वविचार

—प. रामनारायण शास्त्री

अथ ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका

वेदोत्पत्ति विषय में इस तथ्य पर विचार कर चुके हैं कि **जिसके पढ़ने से यथार्थ विद्या का ज्ञान** होता है, **जिसको पढ़के विद्वान्** होते हैं , **जिससे सब सुखों का लाभ** होता है और **जिससे ठीक-ठीक सत्यासत्य** का **विचार मनुष्यों** को होता है **उस ज्ञानराशि का नाम वेद** है । सृष्टि के आदि में वह ज्ञान राशि चार ऋषियों के अन्त:करण में ऋक् यजु: सामाथर्व के रूप में परमपिता परमात्मा ने प्रदान की इसी कारण ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद के रूप में चार ही वेद संहितायें मानी जाती है । परमपिता परमेश्वर अनादि अनन्त सर्वज्ञ और सर्वसामर्थ्य युक्त नित्य शुद्धि बुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूप है अत: उसका ज्ञान और सामर्थ्य भी नित्य निर्दुष्ट और आनन्दप्रद है। वेदों में जितने शब्द अर्थ और सम्बन्ध हैं वे सब ईश्वर से ही प्रकट हैं ।

यह सब कुछ जानने व समझने के बाद **अब वेदों के नित्यत्व के विषय में विचार** कर रहे हैं । वेदों की उत्पत्ति चूंकि ईश्वर से हुई है, इसलिए उनका नित्यभाव तो स्वाभाविक रूप से सिद्ध है, क्योंकि ईश्वर का सामर्थ्य नित्य है ।

जैसे कि घड़ा कपड़ा आदि अनेक पदार्थ हम मनुष्यादि प्राणियों के काम में आते रहते हैं और बनते बिगड़ते रहते हैं वैसे ही शब्द भी मनुष्य के व्यवहार में उच्चारणादि के काम में आता है और बनता बिगड़ता रहता है, इसलिए अन्य पदार्थों की भांति शब्द भी नित्य एकरस नहीं है, और चूंकि वेद शब्दमय शब्दरूप है अत: शब्द के नित्य न होने से वेद भी नित्य नहीं हैं । यह स्वाभाविक प्रश्न मानव मात्र के मस्तिष्क में उत्पन्न होता है ।

निरुक्तकार यास्क के एक वाक्य के साथ हमारा निवेदन है कि 'इन्द्रियनित्यं वचनमौदुम्बरायण:'' इन्द्रिय=वाक् इन्द्रिय अथवा श्रोत्र इन्द्रिय में नित्य-नियम=ठहरा हुआ=स्थिर वचन=शब्द होता है यह बात औदुम्बरायण की ओर से निरुक्तकार कह रहे हैं । इसका अर्थ है कि शब्द=वचन इन्द्रिय में नियत है स्थित है यहाँ इन्द्रिय शब्द से मानव इन्द्रिय तथा दिव्य इन्द्रिय दोनों ही स्वीकार्य हैं । क्योंकि मानव की उत्पत्ति से पूर्व भी दिव्य इन्द्रिय=आकाश और शब्द दोनों ही विद्यमान थे । **इसीलिए दर्शन शास्त्र शब्द को आकाश** का गुण मानता है । अत: हम निवेदन करना चाहते हैं कि मानव इन्द्रिय में रहने वाला शब्द नित्य नहीं है वह कार्य है । अर्थात् व्यवहार में आता रहता है और बनता बिगड़ता रहता है **परन्तु दिव्य इन्द्रिय आकाश** में स्थित शब्द **देवीवाक् तो आकाश ही तरह ही नित्य** है । इसलिए शब्द को दो प्रकार का माना जाता है । नित्य और कार्य। जो **देवीवाक्** है **परमपिता परमेश्वर** के ज्ञान में स्थित है **वह नित्य** है और जो **हम मानवों की अपनी इच्छा** से अपने **व्यवहार के लिए काम में आने वाले शब्द हैं वे कार्य अर्थात् अनित्य** हैं । अतएव वेद परमात्मा के ज्ञान में सदा रहने वाले हैं दैवीवाक् रूप हैं, पुन: शब्द रूप होने पर भी नित्य है, क्योंकि वे ईश्वर से ही उत्पन्न हुए

हैं । अब इस समस्त तथ्य को महर्षि दयानन्दजी के ही शब्दों में जैसा कि उन्होंने ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में लिखा है वैसा ही उध्दृत करते हैं-

ईश्वरस्य सकाशाद् वेदानामुत्पत्तौ सत्यां स्वतो नित्यत्वमेव भवति, तस्य सर्वसामर्थ्यस्य नित्यत्वात्। भाषार्थः- अब वेदों के नित्यत्व का विचार किया जाता है। सो वेद ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं इससे वे स्वतः नित्यस्वरूप ही हैं, क्योंकि ईश्वर का सब सामर्थ्य नित्य ही है।

अत्र केचिदाहुः- न वेदानां शब्दमयत्वान्नित्यत्वं सम्भवति। शब्दोऽनित्यः कार्यत्वात् घटवत्। यथा घटः कृतोऽस्ति तथा शब्दोऽपि। तस्माच्छब्दानित्यत्वे वेदानामपि अनित्यत्वं स्वीकार्यम्।

मैवं मन्यताम्। शब्दो द्विविधो नित्यकार्यभेदात्। ये परमात्मज्ञानस्थाः शब्दार्थसम्बन्धाः सन्ति, ते नित्या भवितुम् अर्हन्ति। येऽस्मदादीमां वर्तन्ते, ते तु कार्याश्च। कुतः यस्य ज्ञानक्रिये नित्ये स्वभाव सिद्धे अनादी स्तः, तस्य सर्वं सामर्थ्यमपि नित्यमेव भवितुमर्हति। तद् विद्यामयत्वात् वेदानामनित्यत्वं नैव घटते।

भाषार्थः- प्रश्न- इस विषय में कितने ही पुरुष ऐसी शंका करते हैं कि वेदों में शब्द छन्द पद और वाक्यों के योग होने से वे नित्य नहीं हो सकते। जैसे बिना बनाने से घड़ा नहीं बनता, इसी प्रकार (शब्दरूप) वेदों को भी किसी ने बनाया होगा। क्योंकि बनाने के पहले नहीं थे, और प्रलय में भी न रहेंगे। इससे वेदों को नित्य मानना ठीक नहीं हैं।

उत्तर- ऐसा आपको कहना उचित नहीं। क्योंकि शब्द दो प्रकार का होता है- **एक नित्य और दूसरा कार्य**। इनमें से **जो शब्द अर्थ** और **सम्बन्ध परमेश्वर** के ज्ञान में हैं, **वे सब नित्य** ही होते हैं। और **जो हम लोगो की कल्पना अर्थात यादृच्छा** द्वारा उत्पन्न होते हैं, वे कार्य होते हैं; क्योंकि जिसका ज्ञान और क्रिया स्वभाव से सिद्ध और अनादि हैं, उसका सब सामर्थ्य भी नित्य ही होता है। इससे वेद भी उसकी विद्यास्वरूप होने से नित्य ही हैं। क्योंकि ईश्वर की विद्या अनित्य कभी नहीं हो सकती।

शब्द के नित्य और कार्य दो भेद मानकर नित्य भेद के कारण वेद की नित्यता स्वीकारते हुए भी **एक प्रश्न और मन में अंकुरित होता है कि जैसे** यह संसार कारण के रूप में नित्य है और कार्य के रूप में **अनित्य** है क्योंकि यह **बनता बिगड़ता** रहता है। जैसे प्रलय के समय कारण रूप स्थित हो जाने पर सब स्थूल जगत् = संसार का अभाव हो जाता है वैसे ही वेद चूंकि पुस्तक के रूप में अब उपलब्ध है **प्रलयावस्था** में उनके नष्ट से वेद **की नित्यता** कैसे रह सकती है ?

इस प्रश्न के उपस्थित होने पर हम कहना चाहते हैं कि यह बात ठीक है कि **सम्प्रति वेद पुस्तकाकार** में उपलब्ध है और **प्रलयावस्था में पुस्तकाभाव** में वेदों का अभाव हो जायेगा। पर सचतो यह है कि वेद ज्ञान राशि और **ईश्वरविद्यास्वरूप** है इसलिए **प्रलयावस्था** में भी **ईश्वरविद्यामय** होने से अपने कारण स्वरूप में **नित्य** ही है। अभाव अथवा अनित्यता की बात पुस्तक कागज स्याही के तौर तो ठीक हो सकती है परन्तु ज्ञानस्वरूप से यह सच सिद्ध नहीं होती।।

अब इस तथ्य को महर्षि के शब्दों में लिखते हैं।

किं चभोः! **सर्वस्यास्य जगतो विभागं प्राप्तस्य कारण रूपस्थितौ सर्वस्थूलकार्याभावे पठनपाठनपुस्कानामभावात् कथं वेदानां नित्यत्वं स्वीक्रियते?**

अत्रोच्यते- **इदं तु पुस्तक मसी पदार्थादिषु घटते, तथास्मत् क्रियापक्षे च नेतरस्मिन्। अतः कारणादीश्वर विद्यामयत्वेन वेदानां नित्यत्वं वयं मन्यामहे। किंच, न पठन-पाठन पुस्तकानित्यत्वे वेदानित्यत्वं जायते। तेषामीश्वर ज्ञानेन सह सदैव विद्यमानत्वात्। यथास्मिन कल्पे वेदेषु शब्दाक्षरार्थसम्बन्धाः सन्ति, तथैव पूर्वमासन्नग्रे भविष्यन्ति च। कुतः? ईश्वरविद्याया नित्यत्वाद् अव्यभिचारित्वाच्च। अत एवेदमुक्तमृग्वेदे- सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। १०।१९०।३।।**

अस्यायमर्थः- **सूर्यचन्द्रग्रहणमुपलक्षणार्थम्। यथा पूर्वकल्पे सूर्यचन्द्रादि रचनं तस्य ज्ञानमध्ये हि आसीत्, तथैव तेन अस्मिन् कल्पेऽपि रचनं कृतमस्तति विज्ञायते। कुतः? ईश्वरज्ञानस्य वृद्धिक्षयाविपर्याभावात्। एवं वैदेष्वपि स्वीकार्यम्, वेदानां तेनैव स्वविद्यातः सृष्टत्वात्।**

भाषार्थः- **प्रश्नः**- सब जगत् के परमाणु अलग-अलग होके कारण रूप हो जाते हैं, तब जो कार्य रूप सब स्थूल जगत् है उसका अभाव हो जाता है। उस समय वेदों के पुस्तकों का (और पठन पाठन का) भी अभाव हो जाता है। फिर वेदों को नित्य क्यों मानते हो?

उत्तरः- यह बात पुस्तक पत्र मसी और अक्षरों की बनावट आदि पक्ष में घटती है, तथा हम लोगों के क्रियापक्ष में भी बन सकती है, **वेदपक्ष में नहीं घटती। क्योंकि वेद** तो **शब्द-अर्थ** और **सम्बन्धस्वरूप** ही है, मसी कागज पत्र पुस्तक और अक्षरों की बनावट रूप नहीं हैं। यह तो मसी आदि द्रव्य लेखन आदि क्रिया है सो मनुष्यों की बनाई है, इससे यह अनित्य है। और **ईश्वर के ज्ञान में सदा बने रहने से वेदों** को हम नित्य मानते हैं। इससे क्या सिद्ध हुआ कि पढ़ना-पढ़ाना और पुस्तक के अनित्य होने से वेद अनित्य नहीं हो सकते। क्योंकि वे बीजांकुर न्याय से ईश्वर के ज्ञान में नित्य वर्तमान रहते हैं। सृष्टि की आदि में ईश्वर से वेदों की प्रसिद्धि होती है, और प्रलय में **जगत् नहीं रहने से उनकी अप्रसिद्धि** होती है। इस कारण से वेद **नित्यस्वरूप** ही बने रहते हैं। (इसीलिए ऋग्वेद में कहा है- **'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्''** परमेश्वर ने सूर्यचन्द्र को पूर्व कल्प के समान ही बनाया है। यहाँ सूर्य चन्द्र ग्रहण उपलक्षणार्थ हैं। इसीलिए) जैसे इस कल्प की **सृष्टि में शब्द अक्षर** अर्थ और **सम्बन्ध वेदों** में है, इसी प्रकार से **पूर्व कल्प** में थे और आगे भी होंगे। क्योंकि जो **ईश्वर की विद्या है, सो नित्य एक** ही रस बनी रहती है। उनके एक अक्षर का भी **विपरीत** भाव नहीं होता। सो **ऋग्वेद से लेके चारों वेदों की संहिता** अब जिस प्रकार की हैं कि इनमें शब्द अर्थ **सम्बन्ध** पद **और अक्षरों का जिस क्रम से वर्तमान** है, इसी प्रकार का **क्रम सब दिन बना रहता है** क्योंकि **ईश्वर का** ज्ञान नित्य है। उसकी वृद्धिक्षय और विपरीतता कभी नहीं होती। इस कारण से वेदों को नित्यस्वरूप ही मानना चाहिए।

<u>महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवन चरित्र की महत्ता पर</u>
<u>प्रसिद्ध लेखक देवेन्द्रबाबू द्वारा लिखित भूमिका</u>
दयानन्द—भारतीय एकता का प्रतिपादक

गौतम बुद्ध ने शुद्धोदन राजा के घर जन्म लेकर और जीवन के दु:ख-क्लेश-मोचन करने के अभिप्राय से गृहत्याग किया था और फल्गु नदी के तीर पर छह वर्ष तक ध्यानावस्थित रहकर उसके प्रभाव से बुद्धिलाभ किया था । पहले वाराणसी में और उसके पश्चात् उत्तर भारत में अनेक स्थानों में परिभ्रमण करके और निर्वाणतत्व को प्रचरित करके लखूखा मनुष्यों के लिए कल्याणपथ को उन्मुक्त किया था और अन्त में कृष्णनगरी के पास एक आम्रकानन में देहत्याग करके परमधाम गमन किया था, **परन्तु बुद्ध ने विच्छिन्न भारत को एकता के सूत्र में बाँधने के पक्ष में क्या कभी एक बात भी कही ?** हमें उत्तर में यही कहना पड़ता है कि नहीं कही ।

नम्बूद्रि ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर **शंकराचार्य ने छोटी ही** अवस्था में **संन्यास ग्रहण** कर लिया था । **अलौकिक प्रतिभा** से वे **अल्पावस्था** में ही **अगाध विद्या के पारदर्शी** हो गये थे । वेदान्त सूत्र का अनुपम भाष्य **रचकर वे संसार में अविनश्वर कीर्ति स्थापित** कर गये हैं, भारत के बहुत से स्थानों में पर्यटन करके अपने सुशाणित तर्कास्त्र के प्रभाव से नाना दिग्देशीय पण्डित-मण्डली को पराभूत करके वेदान्तमत का प्राधान्य स्थापित कर गये हैं । सौ मनुष्य भी अपने जाने हुए विषय को एकत्र करके जिस कार्य के करने में असमर्थ हैं, शंकराचार्य उसे बत्तीस वर्ष की आयु में अकेले ही सम्पादित करे दिव्यधाम को प्रस्थान कर गये हैं । शंकराचार्य यह सब कुछ कर गये । **परन्तु क्या उन्होंने विभक्त और विच्छिन्न भारत में ऐक्य स्थापन के लिए कोई यत्न किया ?** उत्तर सिवाय 'नहीं' के और कुछ नहीं हो सकता ।

बंग भूमि के प्रांचल भाग के **गौरव श्री गौरांगदेव नवद्वीप** में आविर्भूत होकर बंगाल को भक्ति की तरंग में निमग्न कर गये, नामजपन और नामकीर्तन के माहात्म्य-विस्तार को चारों दिशाओं में प्रतिष्ठित कर गये । संकीर्तन के पूत, पवित्र पुण्यमय स्रोत को उन्मुक्त करके दीन-हीन मनुष्यों को स्वर्ग की ओर खींच ले गये । **तन्त्रोक्त घृणित और जुगुप्सित आचार-विचार से सैकड़ों मनुष्यों की रक्षा करके देश का अशेष** कल्याण कर गये । **और अन्त में जगन्नाथ में देह त्यागकर इस लोक से यात्रा कर गये, परन्तु क्या उन्होंने** भारत में **भारतीयता स्थापन करने के लिए कभी एक बात भी कही ?** हमें कहना पड़ता है, एक भी नहीं ।

इस प्रकार हम **देखते हैं कि भारत में जितने भी आचार्य** हुए हैं वे **सब के सब इस विषय** में चुप हैं । यह हो सकता है कि उनके लिये जो समग्र मानव-मण्डली के दु:खहरण का कठोरतम व्रत धारण करते हैं, देश- विदेश अथवा जाति विशेष की उन्नति साधन करना क्षुद्र बात हो । यह भी हो सकता है कि जो अपनी अलौकिक ज्ञान-चक्षु के आलोक से संसार को ही नहीं, विश्वभर को ही मिथ्या सिद्ध करके दिखा गये हैं, जो अपनी अद्भुत शक्ति के प्रभाव से सारे जगत् के अस्तित्वबोध को "सर्प और रज्जु" के उदाहरण के

समान एक महाभ्रम बता गये हैं, उनके लिए किसी देश में ऐक्य स्थापना करना एक तुच्छ बात रही हो । यह ठीक ही है कि उनके लिए जो ईश्वर-प्रेम में अहर्निश उन्मत्त रहते थे, किसी देश विशेष की उन्नति एक गौण बात रही हो । हम यहाँ तक भी कह सकते हैं कि इन बातों का वास्तविक आध्यात्मिक महत्त्व न भी हो तथापि यह अवश्य मानना पड़ेगा कि ये सब बातें किसी न किसी अंश में आवश्यक हैं । यदि मनुष्य अपने घर में दाल, चावल, घी, तेल, मिरच, मसाला आदि का संग्रह करता है तो क्या दार्शनिक दृष्टि से वह कोई बड़ा काम करता है ? नि:सन्देह नहीं, परन्तु फिर भी ऐसा करना उसके लिए अत्यन्तावश्यक है, क्योंकि इन वस्तुओं के बिना उसकी देह रक्षा ही नहीं हो सकती। यदि कोई सूई के छिद्र में धागा पिरोकर वस्त्र सीता है वा अपने पुराने कपड़ों की मरम्मत करता है तो क्या ऐतिहासिक दृष्टि से यह बड़ा काम गिना जा सकता है? कदापि नहीं, परन्तु इसका करना उसके लिए आवश्यक है। यदि मनुष्य अपने घर के चारों ओर के गढ़े भरने के लिए गोबर-मिट्टी लाता है तो क्या राष्ट्रीय दृष्टि से इसे कोई महान् कार्य कहा जा सकता है? गढ़ों में सर्पादि जन्तु आश्रय लेकर रहने वाले मनुष्यों का प्राणनाश तक कर सकते हैं। फलत: उपर्युक्त कार्य-समूल यद्यपि महत्वहीन समझे जाते हैं, तथापि उन्हें करना ही पड़ेगा। यदि उनका सम्पादन न किया जाएगा तो देह-रक्षा के विषय में अनेक विघ्न उपस्थिति होंगे, यहाँ तक कि असमय में शरीर के विनाश की भी सम्भावना हो सकती है।। यह सभी स्वीकार करते हैं कि देह-रक्षा समस्त आशा, भरोसे, उन्नति और आकांक्षा की मूल है। इसलिए यद्यपि यह कार्य-समूल सामान्य और अगण्य है और यद्यपि राष्ट्रीय वा दार्शनिक दृष्टि से इसका कुछ मूल्य नहीं, है, तथापि उसका नियमित रूप से सम्पादन करना मनुष्य के लिए आवश्यक है।

इसी प्रकार देश में एकता स्थापन करना वा जातीयता के संसाधन की चेष्टा करना भी आवश्यक है। जिस देश में एकता नहीं, परस्पर की प्रीति नहीं, सद्भाव और संवेदना का बन्धन नहीं, उस देश में जीवन-यात्रा का निर्वाह निरापद नहीं हो सकता।जिस जाति के अन्दर जातीयता नहीं, **जो जाति भाषागत, सम्प्रदायगत, रीति-नीतिगत, आदर्शगत और धर्मगत विभिन्नताओं से शतधा छिन्न-भिन्न, हो रही हो, उस जाति का सदस्य रहना अनेक अंशों में ऐहिक और पारमार्थिक उन्नति में अनेक प्रकार से विघ्नकर ही होगा। यह बात कुछ सूक्ष्म है, इसलिए हम उसे कुछ खोलकर कहना चाहते हैं।**

बात यह है मनुष्य सामाजिक जीव है। वह अकेला रहकर, सर्वतोभावेन, नि:संग वा सम्बन्धरहित रहकर, किसी से कुछ सहायता न लेकर, देह-यात्रा का निर्वाह नहीं कर सकता और उन्नति के मार्ग में एक पग भी आगे नहीं रख सकता। एक मनुष्य की उन्नति-अवनति और कल्याण-अकल्याण का सम्बन्ध उसके पड़ोसियों यहाँ तक कि समस्त स्वदेशवासी जन-साधारण की उन्नति-अवनति, कल्याण-अकल्याण के साथ अविच्छिन्नरूप से है। यदि हमारे ग्राम, पथ, घाट आदि परिष्कृत और स्वच्छ न हों तो हम स्वास्थ्य भोग नहीं कर सकते। जैसे हम अपने शिक्षा-भवन को परिष्कृत रखना अपना कर्त्तव्य समझते हैं, वैसे ही अपने ग्राम, पथ,घाट आदि को भी स्वच्छ और निर्मल रखना हमें अपना कर्त्तव्य समझना चाहिए। यदि हम अपने पुत्र को सत्स्वभाव-सम्पन्न रखना चाहते हैं तो हमें अपने ग्राम-निवासियों को भी

सच्चरित्र बनाने का यत्न करना पड़ेगा। यदि ऐसा न किया जाएगा तो ग्राम के बालक दुष्ट हो जाएंगे और उनके साथ मिलने-जुलने से हमारे पुत्र के भी दुश्चरित्र हो जाने की सम्भावना होगी। यदि हम स्वयं साधु रहना चाहते हैं तो हमें अपने मोदी को भी साधु रखना होगा। कल्पना कीजिये कि हम छुट्टी पाकर पेंशन लेकर यह संकल्प करके अपने घर आये हों कि जीवन का शेष काल आध्यात्मिक चर्चा में बिताएँगे। अब यदि हमारा मोदि कुत्सित भक्ष्य-द्रव्य हमारे उदर में पहुँचाता है, हमारा ग्वाला अस्वच्छ, गन्दा पानी मिला हुआ दूध पिलाकर हमारे शरीर में रोग का संचार कर देता है तो हम आध्यात्मिक चर्चा वा भजन-साधन निरापदरूप से कैसे कर सकेंगे? बारम्बार रोगाक्रान्त रहने और अनेक प्रकार की घोरतर अशान्ति से पूर्ण जीवन व्यतीत करने से हम असमय में ही देहत्याग करके परलोक सिधार जाएँगे, फिर कहाँ रहेगा हमारा भजन-साधन और कहाँ रहेगा **आध्यात्मिक चर्चा का संकल्प**? इस प्रकार **एक और भी दृष्टान्त** दिया जा सकता है, जिससे यह **प्रमाणित** होगा कि जैसे राष्ट्रीय **उन्नति समष्टिगत** उन्नति पर निर्भर है वैसे ही समष्टिगत उन्नति व्यक्तिगत उन्नति पर स्थित है। हमारी उन्नति दस **मनुष्यों की उन्नति** के साथ सम्बद्ध है और हमारी अवनति भी दूसरे मनुष्यों की अवनति के साथ ग्रथित है, क्योंकि हम सामाजिक जीव हैं। अब हम समझते हैं कि **इस बात को अधिक विस्तारपूर्वक बतलाने की आवश्यकता** नहीं है कि देशवासियों में देश-प्रेम का बन्धन वा **देश में जातीयता का संगठन** होना अत्यन्तावश्यक है। मनुष्य-जाति का इतिहास इस सत्य की स्पष्टाक्षरों में घोषणा करता है कि धन-धान्य की उन्नति, शिल्प की उन्नति, साहित्य की उन्नति और अन्य सब प्रकार **की उन्नति जातीय एकता,** बल्कि यों कहना चाहिए, **जातीय स्वाधीनता** के बिना हो ही नहीं सकती। इसलिए स्थल विशेष के **निष्कण्टक वा निरापद** हुए बिना **जीव की कैवल्य-प्राप्ति** वा परमपुरुषार्थ-साधन की चेष्टा भी सफल नहीं हो सकती।

आर्य जाति के इतिहास की क्रमपूर्वक आलोचना करने से ज्ञात होता है कि इस अपेक्षाकृत सामान्य परन्तु नितान्त आवश्यक **विषय के सम्बन्ध में न तो वैदिक समय के आचार्यगण,** न बुद्ध और बौद्ध युग के उपदेष्टा और न चैतन्य, नानक प्रभृति सन्त-महाजनों के मुख से ही एक शब्द निकला मनु, अत्रिप्रभृति ऋषिगण स्मृतिकार भी अपनी स्मृतियों के किसी सूत्र में इस विषय पर किसी बात का वर्णन करके नहीं गये। मध्यवर्ती काल के **पौराणिकगण** भी इस विषय पर **न आख्यान के रूप में उपदेश-भाव** से ही कोई उल्लेख कर गये है। अपेक्षाकृत आधुनिक समय के व्यवस्थापक और संग्रहणकर्त्तागण भवदेवभट्ट, शूलपाणि, स्मार्त रघुनन्दन प्रभृति वृषोत्सर्गादि श्राद्ध के विषय में विस्तारपूर्वक व्याख्या कर गये हैं, यहाँ तक कि छींक और छिपकली आदि के शुभाशुभ फल के सम्बन्ध में भी व्यवस्था दे गये हैं; परन्तु इस अत्यन्त **प्रयोजनीय** विषय के **सम्बन्ध में एक पंक्ति** भी लिखकर नहीं गये। यही भारत का दुर्दृश्य है, यही आर्यों का अमित कलंक है, यही हमारी जाति की उन्नति के विषय में विघ्न है। ऐसा ज्ञात ही नहीं होता कि भारत में कभी किसी अंश में भी स्वदेशता वा स्वजातित्व का भाव हो रहा हो। **इस देश के लोग कुलगत वा वर्णगत गौरव** में ही व्यस्त रहते **थे। हम अब तक कुलगौरव वा वर्णगौरव ही की बातों की भरमार करते आये हैं।** जितना हम **इस बात के लिए उत्सुक रहते हैं कि तुम ब्राह्मण हो वा क्षत्रिय, श्रोत्रिय हो वा स्मार्त्त,**

परमारों के वंशधर हो या सिसोदियों के कुल में, इतना हम यह जानने के इच्छुक नहीं रहते कि तुम भारतवासी हो वा आर्यजाति के सदस्य हो। यही कारण है कि हमारे शास्त्र और संहिताएँ कुलगाथाओं और ब्राह्मणादि वर्ण की कथाओं से परिपूर्ण हैं। सारांश यह है कि जाति की एकता वा जाति की उन्नति के विषय में भारतीय आचार्यगण जैसे मौन हैं भारत की शास्त्र संहिताएँ भी वैसी ही निर्वाक् हैं।

यह देश का सौभाग्य था कि **वर्त्तमान समय के आचार्य स्वामी दयानन्द** ने हमारी युग-युग-व्यापिनी इस नीरवता को भंग करके, चिरन्तनी उदासीनता को छिन्न-भिन्न करके **शास्त्र-संस्कार और धर्म-संस्कार** के साथ-साथ जातीय **एकता** की आवश्यकता को भी प्रतिपादित किया । उन्होंने **कौपीनधारी संन्यासी** होते हुए भी इस बात को सुस्पष्टरूप से **जान लिया था कि जब तक स्वदेशीजनों में बल** नहीं बढ़ेगा स्वदेश में जातीयता प्रतिष्ठित नहीं होगी, जाति के अन्दर एकता बन्धन दृढ़तर न होगा, तब तक धर्म-संस्कार, **शास्त्र**-संस्कार, देशोन्नति, सामाजिकोन्नति आदि कुछ भी न हो सकेगा। इसी कारण से जैसे वह समस्त भारत में एक शास्त्र अर्थात् वेदशास्त्र को स्थापित करने के लिए आजीवन संग्राम करते रहे, वैसे ही वेद **प्रतिपादित** एक अद्वितीय **परमेश्वर की उपासना** को प्रतिष्ठित करने के लिए **मन, वचन, कर्म** से चेष्टा करते रहे। उन्होंने जैसा प्रयास भारत के कुलगत, वर्णगत, सम्प्रदायगत शाखा-प्रशाखा भेद को छिन्न-भिन्न करके **आर्यजाति** के संगठन के **निमित्त** किया था, वैसा ही प्रबल परिश्रम उन्होंने इसके निमित्त भी किया था कि **आर्यावर्त्त** में आदि से अन्त तक एक भाषा प्रचलित हो जाए। वस्तुत: इसी उद्देश्य से उन्होंने हिन्दी भाषा को आर्यभाषा, अर्थात् समस्त आर्यावर्त्त में प्रचलित भाषा का नाम दिया था।

बहुत दिन हुए जबकि प्रसिद्ध हण्टर (Hunter) साहब की अध्यक्षता में शिक्षा-कमीशन (Education commission) बैठा था तो उन्होंने उसके सामने हिन्दी का पक्ष स्थापित करने के पक्ष में साक्षी देने के लिए देश के उच्च पदारूढ़ और सम्भ्रान्त मनुष्यों को प्रोत्साहित किया था। इन सब बातों की आलोचना करने से **स्पष्टरूप से मालूम होता** है कि इस संन्यासी के **हृदय में यह प्रबल इच्छा** और **उत्साह** था कि सारे भारत वर्ष में एक शास्त्र प्रतिष्ठित हो, एक देवता पूजित हो, ये जाति संगठित हो और एक भाषा प्रचलित हो। यही नहीं कि **उनमे केवल ऐसी सद् इच्छा और उत्साह** ही था, वरन् वे इस इच्छा और उत्साह को किसी अंश तक कार्य में परिणत करने में भी कृतकार्य हुए थे। अतएव **स्वामी दयानन्द** केवल संन्यासी ही नहीं थे, केवल वेद-**व्याख्याता** ही नहीं थे, **केवल शास्त्रों के मर्मोद्घाटन** करने में ही निपुण नहीं थे, केवल तार्किक ही नहीं थे, केवल **दिग्विजयी पण्डित** ही नहीं थे, अपितु वे भारतीय एकता के स्थापन कर्त्ता **भी थे, भारत** की जातीयता के **प्रतिष्ठाता** भी थे! इसलिए भारत की आचार्य-मण्डली में दयानन्द का **स्थान** विशिष्ट और अद्वितीय है, अत: दयानन्द को सुप्रतिष्ठित करने के पक्ष में यह **हमारा चौथा** हेतु है।

महर्षि दयानन्द का अंगद चरण

त्रैतवाद

-बिहारीलाल शास्त्री

आचार्य शंकर ने अद्वैतवाद की स्थापना की, उनके गु आचार्य गौड़पाद का अद्वैतवाद बिल्कुल बौद्धों के प्रतीत्य समुत्पाद्यवाद की नकल है। शून्यवाद पंचस्कन्ध सब वैभाविक बौद्धों के सिद्धान्तों का अनुकरण है। आचार्य रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद तो और भी गड़बड़ है। अद्वैत भी और विशिष्ट भी।

श्री स्वामी दयानन्द का सिद्धान्त स्पष्ट है:- त्रैतवाद अर्थात् ईश्वर जीव और प्रकृति तीनों अनादि हैं। यह सिद्धान्त स्वामी जी की अपनी कल्पना नहीं किन्तु **'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया'** इस ऋग्वेद के मन्त्र के आधार पर है।

एक वृक्ष है- यह संसार। दो पक्षी हैं जीव और ब्रह्म। एक फल खाता है और उसका अच्छा बुरा परिणाम भी भोगता है। दूसरा सर्व व्यापक सर्वज्ञ परन्तु निर्विकार है क्योंकि निराकाँक्ष है-ब्रह्म! अब देखो गीता का 13 वाँ अध्याय श्लोक 19 तथा इस पर शांकर भाष्य।

प्रकृति पुरुष चैव विद्धयनादी उभावपि।
विकाँराश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृति संभवान्।।

अर्थ शांकर भाष्य:- प्रकृति पुरुषा च एव ईश्वरस्य प्रकृती तौ प्रकृती पुरुषौ उभौ अपि अनादि विद्धि। न विद्यते आदि: ययो: तौ अनादी। नित्यत्वेन भवितुम्। प्रकृति द्वयवत्वम् एवहि ईश्वरस्य ईश्वरत्वम् याभ्यां प्रकृतिभ्यां ईश्वरो जगदुत्पत्ति स्थिति प्रलय हेतु: ते द्वे अनादी स संसारस्य कारणम्।

हिन्दी- प्रकृति और पुरुष जो कि ईश्वर की प्रकृतियां हैं उन दोनों को ही तू अनादि जान। जिन का आदि न हो उसका नाम अनादि है। ईश्वर का ईश्वरत्व नित्य होने के कारण उसकी दोनों प्रकृतियों को भी नित्य होना उचित ही है। क्योंकि इन दोनों प्रकृतियों से युक्त होना ही ईश्वर की ईश्वरता है। जीव दोनों प्रकृतियों द्वारा ईश्वर जगत उत्पत्ति स्थिति और प्रलय का कारण है वे दोनों अनादि सिद्ध ही संसार का कारण हैं।

यहाँ आचार्य शंकर ने प्रकृति और जीव दोनों को अनादि तथा संसार का कारण बताया है। जब प्रकृति संसार का कारण है, तो उपादान कारण ही हो सकती है। ईश्वर निमित्त कारण है। जीव के कर्म और स्वभाव भी निमित्त है जीव के लिये ईश्वर सृष्टि रचना करता है। यदि प्रकृति उपादान कारण है तो मेह्योपादान कारण कहने वालों के मुख पर तमाचा लग गया। अब प्रकृति शब्द के अर्थ भी सुनिये:-

प्रकृति शब्द काव्यों में प्रजा के लिए आता है यथा:-

यथाह्लादनाच्चन्द्रो प्रतापत्तपनो यथा।
तथैव सौन्वयाथोऽभूत् राजा प्रकृति रञ्जनात्।। रघुवंश -४.१२।

महाराज रघु प्रकृति को अर्थात् प्रजा को प्रसन्न करने से अन्वर्थे राजा कहाते थे। इसी प्रकार काव्यों में अन्यत्र भी प्रकृति शब्द प्रजा के लिए आया है।

वास्तव में प्रकृति और **जीव दोनों ही ईश्वर की प्रजा** हैं और अनादि हैं। राजा बिना प्रजा के नहीं रह सकता। राजा अनादि तो प्रजा भी अनादि। ईश्वर का **कोई काम निरर्थक** नहीं हो सकता, अतः जीव के कर्म द्वारा **मोक्ष प्राप्ति** हेतु यह **सृष्टि रची** जाती है। ईश्वर **निराकाँक्ष** है वह अपने लिये नहीं किन्तु जीवों के लिए **सृष्टि रचना** करता है और यह गुण उसका स्वाभाविक है। अतः उसमें **इच्छा वा परिश्रम** का प्रश्न ही नहीं।

''स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च''

''उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः'' (उपनिषद्)

गीता के इस वचन में परमात्मा को उत्तम पुरुष और अन्य अर्थात् जीव और प्रकृति से भिन्न बतलाया है। इस प्रकार **गीता से और इस शांकर भाष्य से** ईश्वर और उसकी **दो प्रकृतियाँ** प्रजाएं **जीव और प्रकृति** अनादि सिद्ध हैं।

रहा इसे केवल अविद्या बताना सो अपने ज्ञान को, आँखों को, बुद्धि को धोखा देना ही है।

गीता में त्रैतवाद के इतने स्पष्ट प्रमाण है कि कोई अद्वैतवादी इसके विरोध में कुछ कह नहीं सकता। प्रकृति पुरुष को ब्रह्म के गुण बताने **वालों को विचारना होगा कि निर्विकार ब्रह्म का गुण विकृत** कैसे हो सकता है। संसार में देखे जाने वाले विकार कहां से आये- गीता ने स्पष्ट कर दिया विकार और गुण प्रकृति से उत्पन्न हैं। **रजोगुण, तमोगुण तथा सत्वगुण** संभव भी विकार प्रकृति से उत्पन्न होते हैं। एक **ब्रह्म** की सत्ता को ही **मानने वाले विकार** किससे उत्पन्न मानेंगे ?

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोयसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्त आयुर्विद्या यशोबलम् ।। मनु. (2-121)

जो सदा नम्र, सुशील, विद्वान और वृक्षों की सेवा करता है, उसका आयु, विद्या, कीर्ति और बलः ये चार सदा बढ़ते हैं । और जो ऐसा करते, उनके आयु आदि चार नहीं बढ़ते ।

संमानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव ।
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा ।। मनु. (2-162)

वही ब्राह्मण समग्र वेद और परमेश्वर को जानता है, जो प्रतिष्ठा से विष के तुल्य सदा डरता है, और अपमान की इच्छा अमृत के समान किया करता है ।

आर्यसमाज का इतिहास

स्रोत का फैलाव

लेखक- इन्द्रवाचस्पति

चिरकाल तक वेद संहिताओं का जाप, और उनके अनुसार शासन प्रचलित रहा । हिमालय की ऊँची चोटियों और गहरी कंदराओं में वेदमन्त्रों का अनुशीलन और मनन होता रहा । **वह समय धन्य** था, क्योंकि **उस समय धर्म अपने सादे** और स्पष्ट रूप में विद्यमान था । लम्बे-लम्बे व्यर्थ क्रियाकलापों और पेंचदार सिद्धान्तों की उस समय न सत्ता थी और न आवश्यकता थी । **वह धर्म का स्रोत**, जिसे उस समय की **प्रजा जलपान करती** थी, शुद्ध और निर्मल था।

परन्तु सदा वह दशा न रही। वह स्रोत फैलती हुई आर्य जाति के साथ चारों ओर फैलने लगा। वह जिन जातियों में और जिन भूमियों में से होकर निकला, जहाँ उनकी प्यास बुझाता गया, वहाँ साथ-ही-साथ उनकी विशेषताओं से प्रभावित भी होता गया। उसके जो दूरवर्ती परिणाम हुए, उनकी चर्चा अगले परिच्छेदों में करेंगे। इस परिच्छेद में **हमें उन धाराओं का वर्णन करना है**, जो **वैदिक-स्रोत से सीधी तौर** पर निकलीं और **वैदिक विचारों का परिणाम मात्र थीं** वे **धारायें चार थीं, जिनमें से दो भारतवर्ष** में बह निकली और तीसरी **कुछ दूरी** पर ईरान अर्थात् आर्य देश में जाकर पारसी धर्म के रूप में प्रकट हुई और चौथी पश्चिम में दूर तक **बह गई**। वह यूनान तथा **रोम से होती हुई सारे यूरोप** में फैल गई। **आर्यावर्त में जो धारायें थीं**, वे ब्राह्मणों के कर्मवाद और उपनिषदों **के ज्ञानवाद** के रूप में प्रकट हुईं। इन दोनों में और ईरान वाली धारा में इतना ही भेद **था** कि जहाँ पहली दोनों वेदों को अपना मूल मानती रहीं, वहाँ तीसरी, **समय और स्थान का अधिक** अन्तर हो जाने से **मूल** को भूल सी गई।

ब्राह्मणों का कर्मवाद

हमने ऊपर कहा है कि **वेद-सहिंताओं के धर्म में सरलता और पवित्रता**, ये दो गुण थे। पीछे से **वेदार्थ को** तीन भागों में विभक्त करके उसके तीन काण्ड बतलाये गए। वे **तीनों ज्ञानकाण्ड, कर्मकाण्ड और उपासनाकाण्ड** कहलाते हैं। वेद में **तीनों का विस्तार** है, परन्तु बहुत **सादगी और सरलता** के साथ। सीधे धागे में जान-बूझकर गाँठ नहीं दी गईं, और सुखप्रद अटारी में भूल-भूलइयाँ नहीं बनाई गई। वेदों में प्रायः सभी जड़-चेतन पदार्थों का ज्ञान है, आवश्यक वर्णन है, परन्तु कहीं भी शब्दों की उलझन या विचार के टेढ़ेपन में उसे छिपाने का यत्न नहीं किया गया। एक ही दृष्टान्त पर्याप्त होगा।

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।"

ब्रह्माण्ड में जितने पदार्थ हैं, सबमें परमात्मा व्याप्त है । कैसा सरल और स्पष्ट भाव है कहीं कहीं **वेद** के संबंध में जो कठिनता अनुभव होती है, उसका यह कारण नहीं कि वेद में कोई कठिनाई रखी गई है, उसका कारण यह है कि **वेद की भाषा पुरानी** हो गई है । उसके शब्दों के **असली मूलार्थ सदियों की काई** ने

छिपा दिये हैं । दूसरा कारण और बड़ा भारी कारण यह भी है कि **स्वार्थ या मोह के वश** में आकर वेद में से ऐसे **अर्थ निकालने के यत्न** होते रहे हैं जिन्होंने वेदों के मूलार्थ को उलझन में डाल दिया है । वेदों की कठिनाई के ऐसे ही कारण हैं । जहाँ ये कारण काम नहीं करते, वहाँ **वेदमंत्रों की सरलता अचम्भे** में डालने वाली है । इसी प्रकार कर्म विधान की व्यवस्था है । वेदों में कर्मों का विधान है, मनुष्य के कर्तव्याकर्तव्य के संबंध में आज्ञायें हैं, यथा '**संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।**' हे मनुष्यो, तुम्हारी गति और वाणी परस्पर अनुकूल हो । तुम्हारे मन परस्पर समान विचार करने वाले हों । इसी प्रकार परमात्मा की उपासना के सूक्त हैं, परन्तु वे भी सरलता लिये हुए हैं।

यह मनुष्य स्वभाव है कि वह **सादगी और सरलता** से सन्तुष्ट नहीं होता । सरल बात उसके लिए जल्दी ही पुरानी हो जाती है, वह नयापन ढूँढने लगता है, इसलिए सरल सुन्दर मुखड़े पर जेवरों की भरमार शुरू होती है । पुरानी सीधी-सादी **सच्चाई से थककर** वह नई पेचीदा व्याख्यायें करने लगता है, अन्यथा उसके चित्त में असन्तोष बना रहता है। **मनुष्य-बुद्धि,** स्वभव से सरल बात को पेचीदा बनाने में ही व्यय होती दिखाई देती है। वेदों के **साथ भी यही** हुआ। वेदों के सरल और सीधे उपदेशों की सुन्दरता बढ़ाने के लिए समय के साथ-साथ **धीरे-धीरे ज्ञान और कर्मादि** के नाम पर **विस्तार** होने लगा। वह विस्तार जिन-जिन शाखाओं में हुआ, उनमें से **प्रथम ब्राह्मणों का कर्मवाद** था।

यह कहना तो कठिन है कि **ब्राह्मणों** की रचना आज से कितने समय पूर्व प्रारम्भ हुई, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि **भारतवर्ष में वेदों के पीछे जिन विचारों** का पहले-पहल संगठन हुआ, वे ब्राह्मण ग्रन्थों में पाये जाते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों का **प्रतिपाद्य विषय दो हिस्सों में बांटा** जा सकता है। **एक व्याख्यान और दूसरा विधान।** ब्राह्मण वेदमंत्रों और सूक्तों की व्याख्या करते हैं। वह व्याख्या **कहीं मन्त्रक्रम से हैं और कहीं यज्ञों की विधि के क्रम** से हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों की पद्धति प्रकट करने के लिए दो दृष्टान्त पर्याप्त होंगे।

एक वेद मन्त्र का पद है "युक्ष्वा हि देवहूतमां अश्वां अग्ने रथीरिव"। इस मंत्र में उपमा रूप से कहा है "जैसे **रथी** लोग घोड़ों को जोतते हैं, वैसे ही हे परमात्मन् अग्ने तुम सब देवताओं को **भौतिक शक्तियों** को अपने-अपने कार्य में लगाते हो।" यहाँ देवताओं की घोड़ों से उपमा दी गई है। उपमानोपमेय भाव साफ है, समानता बिल्कुल निर्विवाद है, परन्तु इतने से **ब्राह्मण ग्रन्थों का सन्तोष** कहाँ होने लगा था। ऐतरेय की पंचम पंजिका में उसकी इस प्रकार व्याख्या है–

"तान्ह स्मान्वेवागच्छन्ति समेव सृज्यन्ते तानश्वा भूत्वा। पद्भिरपाघ्नत तदश्वानामश्वतवमश्नुते यद्यत्कामयते य एवं वेद। तस्मादश्वः पशूनां जविष्ठः। तस्मादश्वः प्रत्यड; पदा हिनस्ति। अप पाप्मानं हते य एवं वेद। तस्मादश्ववदान्यं भवति।"

देवत लोग आगे को **चले** और असुर लोग उनके **पीछे-ही-पीछे** चले आये। देवताओं ने जब और उपाय न देखा तो घोड़ों का रूप धारण करके पिछले पैरों से **मारना शुरू किया। घोड़े होकर** पिछले पाँव से

ारा, यह अश्वों का अश्वत्व है। जो आदमी इस बात को जानता है, वह जो कुछ चाहता है, प्राप्त कर लेता ं। इसलिए घोड़ा सब पशुओं से तेज है। इसलिए वह पिछली दुलत्तियों से मारता है। जो आदमी इस बात ो जानता है, वह जो फल चाहता है प्राप्त करता हे। इसीलिए अश्व के समान देवताओं का आश्व विधान ं।

एक और नमूना लीजिये, आदित्य **शब्द की व्याख्या** करते हुए गोपथ ब्राह्मण लिखता है:-

''अदितिर्वै प्रजाकामौदनमपचत्। तत उच्छिष्टमश्नात्। सा गर्भमधत्त तत आदित्या अजायन्त।''

अदिति ने पुत्र की **इच्छा से भात** तैयार किया। उस भात का शेष भाग खाया। उससे गर्भ होकर आदित्य उत्पन्न हुए।

इस प्रकार की व्याख्यायें **ब्राह्मणों में** बहुत हैं। ब्राह्मणकारों ने **सरल बात का महत्वपूर्ण कारण** बताने के लिए प्राय: इसी प्रकार की **कल्पनाओं तथा अर्थवादों** से काम लिया है। मनुष्य-बुद्धि इसी प्रकार बहुत ीधे अर्थ में उलझन डाल लिया करती है। यहाँ पर यह हृदय में अंकित कर छोड़ना चाहिए कि ब्राह्मणों के इन्हीं अर्थवादों के विस्तार का नाम पुराण हुआ। पुराणों में **ब्राह्मणों की इन अद्भुत कल्पनाओं की नींव** पर और भी अधिक शानदार कल्पनाओं के महल खड़े किये गए हैं।

ब्राह्मणों की इन **कल्पनाओं को दिखाने से हमारा यह तात्पर्य नहीं कि उनमें सिवाय झमेले** के कुछ है **ही नहीं**। आज भी बहुत से **वैदिक शब्दों के मूल अर्थ जानने में ब्राह्मण ही एकमात्र** ? सहायक हो सकते हैं। **ब्राह्मणों** में अनेक स्थल ऐसे भी हैं जिनमें ऊँचे दर्जे का अध्यात्म-ज्ञान प्रतिपादित है। मन्त्रों और मन्त्रखण्डों की व्याख्या द्वारा ब्राह्मणों ने **वैदिक जनता** का उपकार भी बहुत किया है, इसमें सन्देह नहीं।

दूसरा विध्यंश है। ब्राह्मणों का **मुख्य अंश** यही है। ब्राह्मण नित्य-नैमित्तिक यज्ञों की विस्तृत **व्याख्या** के लिए लिखे गए थे। यह कार्य वेदमन्त्रों की व्याख्या और चर्चा के बिना असम्भव थ। इसलिए **ब्राह्मणों** में यज्ञों की विधि और यज्ञसंबंधी वेदमन्त्रों की व्याख्या ये दोनों ही कार्य साथ-साथ पाये जाते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञों की विधि की विस्तृत व्याख्या है और उसके एक-एक अंश का कारण समझने का भी यत्न किया गया है। मुख्यतया ब्राह्मण यज्ञ को ही प्रधान मानकर उनकी व्याख्या करते हैं।

यह कहना तो ठीक नहीं कि ब्राह्मण केवल कर्मयज्ञ को धर्म मानते हैं, ज्ञान या उपासना को तुच्छ समझते हैं क्योंकि ब्राह्मण ग्रन्थों में कहीं पर भी ज्ञान, कर्म आदि की तुलना नहीं की गई। तुलनायें पीछे हुईं और ब्राह्मण ग्रन्थों को ही धर्म-ग्रन्थ मानने वालों ने 'आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम्' इत्यादि मीमांसा सूत्रों की यह व्याख्या की कि वेद का उद्देश्य केवल यज्ञ की विधि बतलाना है। जिस मन्त्र का तात्पर्य यज्ञ में नहीं, वह अनर्थक है। ब्राह्मणों में केवल कर्मांश की व्याख्या है।

ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रतिपाद्य विषय दो भागों में बाँटा जाय तो वे दो भाग व्याख्या और विधान कहलायेंगे। उनमें से पहला भाग आगे चलकर पुराणों और अन्य देशों की Mythology की कल्पनाओं का कारण हुआ और दूसरा भाग कर्मवाद और Ritualism का मूल सिद्ध हुआ।

कृष्ण के जीवन पर एक दृष्टि

– एक कृष्ण भक्त

कृष्ण के चरित्र में सत्य प्रकट करना बड़ा ही कठिन है, क्योंकि मिथ्या और अलौकिक घटनाओं की भस्म में यहां सत्य रूपी अग्नि ऐसी छिप गई है कि उसका पता लगाना टेढ़ी खीर है । जिन उपादानों से सच्चा कृष्ण चरित्र प्रकट हो सकता है वह असत्य के समुद्र में निमग्न हो गए हैं फिर भी जितना सत्य उपलब्ध होता है उसके आधार पर कृष्ण चरित्र का बड़ा उत्तम प्रतिपादन होता है ।

बचपन में श्री कृष्ण आदर्श बलवान थे । उस समय उन्होंने केवल शारीरिक बल से ही हिंसक जन्तुओं से वृन्दावन की रक्षा की थी । और कंस के मल्लादि को भी मार गिराया था । गौ चराने के समय ग्वालों के साथ खेल–कूद और कसरत कर उन्होंने अपनी शारीरिक बल की वृद्धि कर ली थी । कुरूक्षेत्र युद्ध में उनके रथ हांकने की भी बड़ी प्रशंसा पाई जाती है ।

अस्त्र शस्त्र की शिक्षा मिलने पर वह क्षत्रिय समाज में सर्वश्रेष्ठ वीर समझे जाने लगे । उन्हें कभी कोई परास्त न कर सका । कंस जरासन्ध, शिशुपाल आदि तत्कालीन प्रधान योद्धाओं से तथा काशी कलिंग, गांधार आदि के राजाओं से वे लड़ गए और सबको उन्होंने हराया । **सात्यकी और अभिमन्यु** उनके शिष्य थे **वे दोनों भी सहज ही हारने वाले** ने थे । स्वयं अर्जुन ने भी युद्ध की बारीकियाँ उनसे सीखीं थी ।

केवल शारीरिक बल और शिक्षा पर जो रण पटुता निर्भर है वह सामान्य सैनिक में भी हो सकती है। सेनापतित्व ही योद्धा का वास्तविक गुण है । महाभारत आदि में एक भी अच्छे सेनापति का पता नहीं लगता भीष्म या अर्जुन अच्छे सेनापति न थे । श्री कृष्ण के **सेनापतित्व** का **कुछ विशेष परिचय जरासन्ध** युद्ध में मिलता है । उन्होंने अपनी **मुट्ठी भर यादव सेना से जरासन्ध** का सामना करना असाध्य समझ कर मथुरा छोड़ना, नया न**गर बसाने के लिए द्वारिका द्वीप का चुनना** और उसके सामने की **रैवतक माला में दुर्भेद्य दुर्ग निर्माण करना** जिस रण नीति का परिचायक है, उस समय के और किसी क्षत्रिय में नहीं देखी जाती है ।

कृष्ण की ज्ञानार्जनी वृत्तियां सब ही **विकास की पराकाष्ठा** को पहुंची हुई थी । वे **अद्वितीय वेदज्ञ** थे भीष्म ने उन्हें **अर्घ प्रदान करने का एक कारण यह भी बताया था** । शिशुपाल ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया था । केवल इतना ही कहा था कि **वेद व्यास के रहते कृष्ण की** पूजा क्यों ?

कृष्ण ने वेद प्रतिपादित उन्नत, सर्वलोक हितकारी सब लोगों के आचरण योग्य धर्म का प्रसार किया ।

इस धर्म में जिस ज्ञान का परिचय मिलता है वह प्राय: मनुष्य बुद्धि के परे है । श्रीकृष्ण ने मानुषी शक्ति से सब काम सिद्ध किए हैं । गीता कृष्ण की अनुपम देन है ।

श्री कृष्ण मन से श्रेष्ठ और माननीय राजनीतिज्ञ थे । इसी से युधिष्ठिर ने वेद व्यास के कहने पर भी

श्रीकृष्ण से परामर्श बिना राजसूय यज्ञ में हाथ नहीं लगाया । स्वेच्छाचारी यादव और कृष्ण की आज्ञा में चलने वाले पाण्डव दोनों ही उनसे पूछे बिना कुछ नहीं करते थे । जरासन्ध को मार कर उसकी कैद से राजाओं को छुड़ाना उन्नत राजनीति का अति सुन्दर उदाहरण है । यह साम्राज्य स्थापना का बड़ा सहज और परमोचित उपाय है । धर्म राज्य स्थापना के पश्चात् उसके शासन के हेतु भीष्म से राज्य व्यवस्था ठीक कराना राजीनीतिज्ञता का दूसरा प्रशंसनीय उदाहरण है ।

कृष्ण की सब कार्यकारिणी वृत्तियां चरम सीमा तक विकसित हुई थी । उनका साहस उनकी फुर्ती और तत्परता अलौकिक थी । उनका धर्म तथा सत्यता अचल थी । स्थान-स्थान पर उनके शौर्य दयालुता और प्रीति का वर्णन मिलता है । वे शान्ति के दृढ़ता के साथ प्रयत्न करते थे और इस के लिए वे दृढ़ प्रतिज्ञ थे वे सबके हितेषी थे । केवल मनुष्यों पर ही नहीं गोवत्सादि जीव जन्तुओं पर भी वह दया करते थे । वे स्वजन प्रिय थे । परलोक हित के लिए दुष्टाचारी स्वजनों का विनाश करने में भी कुंठित न होते थे । कंस उनका मामा था । उनके जैसे पांडव थे वैसे शिशुपाल भी था । दोनों ही उनकी फूफी के बेटे थे । उन्होंने मामा और भाई का लिहाज न कर दोनों को ही दण्ड दिया ।

जब यादव लोग सुरापायी (शराबी) हो उदण्ड हो गए थे । उन्होंने उनको भी अछूता न छोड़ा । श्रीकृष्ण **आदर्श मनुष्य** थे । मनुष्य का आदर्श प्रचारित **करने के लिए उनका प्रादुर्भाव** हुआ था । वे **अपराजय, अपराजित, विशुद्ध**, पुण्यमय, प्रेममय, दयामय, दृढ़कर्मी, धर्मात्मा, वेदज्ञ, नीतिज्ञ, धर्मज्ञ, लोकहितैषी, न्यायशील, **क्षमाशील, निर्भय, निरहंकार योगी और तपस्वी** थे । वे मानुषी शक्ति से काम करते थे परन्तु उनमें **देवत्व** अधिक था । पाठक अपनी बुद्धि के अनुसार ही इसका निर्णय कर ले कि जिसकी शक्ति मानुषी पर चरित्र मनुष्यातीत था वह पुरुष मनुष्य या देव था । राइम डेविड्स ने भगवान बुद्ध को हिन्दुओं में सबसे बड़ा ज्ञानी और महात्मा माना है । हम भी कृष्ण को ऐसा ही मानते हैं।

लेखकों से निवेदन

दयानन्द स्मृति प्रकाश में उन लेखों, कविताओं, रचनाओं को दिया जाता है जो महर्षि दयानन्द के सम्पूर्ण जीवन, व्यक्तित्व, उनके द्वारा सम्पादित समस्त ग्रन्थ, स्थापित संस्थाओं, कार्यों व उनके प्रयोजनों का प्रचार प्रसार करते हुए दयानन्द को दयानन्द के कार्यों, दयानन्द के मन्तव्यों, मान्यताओं, धारणाओं को स्थापित करते हैं, अत: सभी लेखकों से निवेदन है कि वे अपनी उन्हीं रचनाओं को भेजे जो दयानन्द के अनुरूप हो । कृपया लेख के अन्त में अपना पूरा पता व चल-दूरभाष अवश्य लिखें।

—सम्पादक

स्वास्थ्य के तीन स्तम्भ
'वात पित्त कफ'
पित्त

वात की तरह पित्त भी **पांच प्रकार** का होता है और शरीर में **पांच स्थानों में** रहता है। यह एक पतला पीले रंग का और तेज़ाब की तरह गर्म द्रव्य (तरल) होता है। यदि **पित्त आम युक्त** होता है तो पित्त का रंग नीलापन लिये होता है और **आम रहित पित्त पीला** रहता है। पित्त के लक्षण (गुण) और चिकित्सा- सूत्र का विवरण आयुर्वेद ने इस प्रकार से प्रस्तुत किया है-

सस्नेह मुष्णं तीक्ष्णं च द्रवमम्लं सरं कटु।
विपरीत गुणैः पित्तं द्रव्यैराशु प्रशाम्यति।।

अर्थात् पित्त तनिक चिकनाई युक्त, उष्ण, तीखा, द्रव, खट्टा, सर और कटु गुण वाला होता है। इनसे विपरीत गुण वाले द्रव्यों के प्रयोग से पित्त का शमन होता है। इसके 5 प्रकार व स्थान इस प्रकार हैं-

(1) पाचक पित्तः- आमाशय में रह कर छः रसों को पचाता है; अग्नि (जठराग्नि) के बल को बढ़ाता है और शरीर के सब पित्तों का पालन-पोषण करता है।

(2) रंजक पित्तः- यकृत (लिवर) व तिल्ली में रह कर रस को रक्त बनाता है।

(3) साधक पित्तः- हृदय में रह कर रक्षा करता है और बुद्धि व स्मरण शक्ति को बढ़ाता है।

(4) आलोचक पित्तः- यह नेत्रों में रह कर देखने की शक्ति प्रदान करता है और इसी के बल से व्यक्ति को दिखाई देता है।

(5) भ्राजक पित्तः- सारे शरीर और त्वचा में भ्राजक पित्त व्याप्त रह कर त्वचा की कान्ति बढ़ाता है और मालिश के तैल को सोखता है।

इन पित्तों में जो भी या जिस जिस स्थान का पित्त कुपित होगा उस-उस स्थान से सम्बन्धित पित्तजन्य व्याधियां उत्पन्न हो जाएंगी।

पित्त के प्रकोप के लक्षण- जब पित्त कुपित होता है तब शरीर में जलन और आग की ज्वाला की आंच लगने का अनुभव होना, गर्मी लगना, खट्टी डकारें आना, पसीना बहुत आना, शरीर से दुर्गन्ध आना, जी मचलाना, घबराहट, उल्टी होने की इच्छा होना या उल्टी होना, मुंह का स्वाद कड़वा होना, त्वचा का सूखा होना और फटना, लाल-लाल चकत्ते होना, अधिक प्यास लगना, मुंह सूखना, पतले दस्त लगना, आँखों व पेशाब का रंग पीला होना और आंखों के सामने अन्धेरा छाना आदि लक्षण प्रकट होते हैं।

पित्त प्रकोप होने के कारण- शारीरिक स्तर पर पित्त कुपितज होने के मुख्य कारण होता है तेज मिर्च मसालेदार, तले हुए और उष्ण प्रकृति के पदार्थों का लगातार अधिक समय तक अति सेवन करना। इसके

अलावा श्रम की अधिकता, मैथुन कर्म में अधिकता, खटाई और खट्टे पदार्थों का सेवन, मादक पदार्थों का सेवन व मांसाहार का सेवन करना, खट्टा दही आदि का सेवन करना और अनुचित ढंग के रहन सहन के कारण पित्त प्रकोप होता है। मानसिक रूप से अधिक क्रोध करना, शोक, चिन्ता व तनाव से पीड़ित रहना आदि कारणों से शरीर में गर्मी बढ़ती है और पित्त कुपित हो जाता है। ऐसे लोग ज्यादातर पित्त प्रकोप से पीड़ित रहते हैं।

प्राकृतिक रूप से ग्रीष्म और शरद ऋतु में, शाम को और आधी रात के समय, युवावस्था और अन्न का पाचन होते समय पित्त कुपित रहता है। वर्षाकाल में पित्त संचित होता है, शरद ऋतु में कुपित होता है और हेमन्त ऋतु में शान्त रहता है।

पित्त प्रकोप का शमन– मधुर, कड़वे, कसैले, शीतल, तरल पदार्थ, विरेचक पदार्थ, मुनक्का, केला, आंवला, परवल, ककड़ी, मिश्री, घी, दूध, पित्त पापड़ा, शतावरी, त्रिफला आदि के सेवन से पित्त प्रकोप का शमन होता है। कफ बढ़ाने वाले पदार्थों का उचित मात्रा में सेवन करने से पित्त का शमन होता है।

कफ

वात और पित्त की भांति कफ के विषय में विवरण देते हुए आयुर्वेद ने बताया है कि **कफ भी पांच प्रकार का होता है** और शरीर में **पांच स्थानों पर रह कर कार्य करता हैं**। कफ का परिचय देते हुए आयुर्वेद कहता है–

गुरु शीत मृदु स्निग्ध मधुर स्थिरपिच्छिलाः।
श्लेष्मणः प्रशमयानित विपरीत गुणार्गुणाः।।

अर्थात् कफ भारी, ठण्डा, मृदु, चिकना, मीठा, स्थिर और पिच्छिल गुण वाला होता है। इन गुणों से विपरीत गुण वाले द्रव्यों के प्रयोग से कफ का शमन होता है। कफ के 5 प्रकार व स्थान इस प्रकार है:-

(1) क्लेदन कफः- यह कफ आमाशय में रह कर अन्न (आहार द्रव्य) को गीला व अलग-अलग करता है।

(2) अवलम्बन कफ– रस युक्त वीर्य से यह कफ हृदय में रह कर हृदयभाग को अवलम्बन देता है।

(3) रसन कफ– यह कफ जीभ और कण्ठ में रह कर चिकनाई बनाए रखता है।

(4) स्नेहन कफ– यह कफ सभी इन्द्रियों को चिकनाई प्रदान कर उन्हें तृप्त रखता है।

(5) श्लेष्मा कफ– सभी जोड़ों में रह कर उन्हें जोड़े रख कर उन्हें अच्छी तरह रहने व काम करने की सामर्थ्य और सुविधा प्रदान करता है।

इन स्थानों में कफ के कुपित होने पर, इन स्थानों (अंगों) से सम्बन्धित कफ जन्य बीमारियाँ पैदा

होती हैं।

कफ प्रकोप के लक्षण– जब कफ **कुपित होता** है तब **मल–मूत्र**, नेत्र और **सारे शरीर का सफेद पड़ जाना**, ठण्ड अधिक लगना, भारीपन, अवसाद, अधिक नींद आना, मुहं चिकना व मीठा रहना, अरुचि, भूख कम हो जाना, पेट भारी लगना, नींद व सुस्ती ज्यादा, शरीर व सिर में भारीपन, मुंह का स्वाद मीठा, लार गिरना, बार–बार मुंह व कण्ठ में कफ आना, मल ज्यादा चिकना होना आदि लक्षण प्रकट होते है।

कफ प्रकोप के कारण– बाल्यावस्था में, भोजन करने के बाद, प्रात:काल और वसन्त ऋतु में कफ प्राकृतिक रूप से कुपित रहता है। शीतकाल में अधिक शीतल व खटाई वाले पदार्थों का सेवन करने से कफ कुपित होता है। हेमन्त ऋतु में शान्त रहता है **दिन में सोना**, श्रम न करना, आलसी दिनचर्या, अधिक मीठा व चिकना आहार लेना, भारी स्निग्ध पदार्थों का अति सेवन, चावल, उड़द, गेहूं, दूध, पनीर, दूध चावल की खीर, मक्खन, घी, मांस, चरबी, मीठे फल और ठीक प्रकार से भोजन पचने से पहले फिर भोजन करना आदि कारणों से शरीर में कफ का प्रकोप होता है।

मानसिक रूप से लोभी मनोवृत्ति रखने से कफ का प्रकोप होता है इसीलिए लोभी–लालची और संग्रह करने का स्वभाव रखने वाला व्यक्ति प्राय: मोटा, भारी शरीर और बढ़े हुए पेट वाला होता है। ऐसे व्यक्तियों का कफ **प्राय: कुपित** ही रहता है।

कफ प्रकोप का शमन– चरपरे, कसैले, रूखे व गर्म पदार्थों का सेवन करना, कफ नाशक स्वेदनक्रिया (पसीना निकालना), कफ–विरेचक (दस्त) लेना, कसरत या अधिक श्रम करना, वमन (उल्टी) करना, ठण्डे पानी में शहद घोल कर पीना, गर्म पानी पीना, त्रिफला, चना, मूंग, लहसुन, प्याज, नीम, निशोथ व कुटकी आदि का सेवन करने से कफ प्रकोप का शमन होता है।

अभी तक आपने वात, पित्त व कफ का प्रकोप होने यानी इनकी वृद्धि होने के परिणामो का विवरण पढ़ा। इनमें से किसी भी एक या दो या तीनों के कुपित होने से तो अस्वस्थता पैदा होती ही है, साथ ही इनकी कमी होने से भी अस्वस्थता पैदा होती है। इस विषय में संक्षिप्त रूप से जानकारी प्रस्तुत करते हैं:–

वात में कमी होने पर सांस लेने में कठिनाई, घबराहट, भारीपन, सुस्ती व अर्धमूर्च्छा का अनुभव होता है। पित्त में कमी होने पर मन्दाग्नि, ठण्डापन, आलस्य, मन में उदासी और निस्तेजता आदि लक्षण प्रकट होते हैं। कफ का क्षय (कमी) होने पर शरीर में रूखापन, जलन, सिर खाली–खाली सा लगना, जोड़ और हाथ पैर ढीले होना, अनिद्रा और शरीर दुबला होना आदि लक्षण प्रकट होते हैं।

तो यह कथा है हमारे शरीर को धारण करने वाली तीन धातुओं यानी वात पित्त और कफ की जो हमारे शरीर और स्वास्थ्य के स्तम्भ यानी खम्भे हैं। जो कुपित होने पर शरीर को दूषित करने वाले हो जाते हैं इसलिए धातु नहीं, **दोष कहे जाते हैं**। इन तीनों का **महत्व और प्रभाव एक समान है** इसलिए तीन खम्भों में प्रत्येक खम्भा महत्वपूर्ण और अनिवार्य होता है जैसे तीन टांग के स्टूल की प्रत्येक टांग महत्वपूर्ण और जरूरी

होती है। एक भी टांग हटाने पर स्टूल खड़ा नहीं रहता, धराशायी होता है। इसी तरह वात, पित्त और कफ – तीनों में से प्रत्येक का अपनी सामान्य स्वस्थ अवस्था में रहना शरीर को स्वस्थ रखने के लिए अनिवार्य है। ये स्वस्थ सामान्य अवस्था में रहते हैं तो शरीर को धारण किये रहते हैं इसलिए धातु कहे जाते हैं लेकिन कम ज्यादा होने पर ये ही रक्षक के बजाय भक्षक बन जाते हैं यानी शरीर को स्वस्थ न रख कर रोगी बना देते हैं। शरीर को दूषित कर देते हैं इसलिए दोष कहलाने लगते हैं। अगर ये तीनों कुपित हो जाएं तो 'त्रिदोष' कहे जाते हैं। यह अवस्था बहुत कष्ट पूर्ण होती है। तीनों दोष कुपित होने को 'सन्निपात' (त्रिदोष) कहते हैं।

इन तीनों के लक्षण ध्यान में रखें। कोई व्याधि हो तो उसके लक्षणों पर ध्यान देकर यह समझ लें कि ये किस दोष के लक्षण हैं। जिस दोष के लक्षणों से मिलते जुलते हों उस दोष को कुपित समझें और उस दोष का शमन करने वाला आहार-विहार करें तो कुपित दोष शान्त हो जाएगा और रोग में भी आराम होने लगेगा। इस तरह प्रिय पाठक एवं पाठिकाएं इस विवरण को ध्यान से पढ़ें, इस ज्ञान से लाभ उठाएं यानी तदनुसार अमल करके अपने शरीर व स्वास्थ्य को स्वस्थ निरोग रखें ताकि बीमार होने की नौबत ही न आये।

प्रश्न– मनुष्य और ईश्वर में क्या सम्बन्ध है? विद्या, ज्ञान से मनुष्य ईश्वर हो सकता है वा नहीं? जीवात्मा और परमात्मा में क्या सम्बन्ध है ? और जीवात्मा और परमात्मा दोनों नित्य हैं और चेतन हैं तो जीवात्मा परमात्मा के अधीन है वा नहीं? यदि है तो क्यों ?

उत्तर– मनुष्य और ईश्वर का राजा प्रजा, स्वामी सेवक आदि का सम्बन्ध है । अल्प ज्ञान होने से जीव ईश्वर कभी नहीं हो सकता । जीव व परमात्मा में व्याप्त सम्बन्ध भी है। जीवात्मा सदा परमात्मा के अधीन रहता है, परन्तु कर्म करने में कभी नहीं, किन्तु पाप कर्मों के फल भोग में वह अनन्त सामर्थ्ययुक्त ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र है और जीव अल्प सामर्थ्यवाला है, इसलिए उसका परमेश्वर के अधीन होना आवश्यक है ।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।। –गीता ४.७

ईश्वर निराकार है, देह धारण नहीं करता देह धारण करना तो जीव का धर्म है ।

भारतीय स्वतंत्र संग्राम में

आर्यसमाज की देन

स्वतंत्रता के लिए सशस्त्र चेष्टा और आर्य समाजः

–डॉ. भवानीलाल भारतीय, एम.ए.पीएच.डी.

काँग्रेस और महात्मा गाँधी के संवैधानिक प्रयत्नों के भिन्न क्रांतिकारियों का मार्ग था। सशस्त्र क्रांति में विश्वास रखने वाले आतंकवादी आन्दोलन के कर्णधार नेता भी स्वामी दयानन्द को ही अपना प्रेरणा–स्रोत मानते हैं। स्वामीजी ने एम काठियावाड़ी युवक श्यामजी कृष्ण वर्मा को विशेष प्रतिभाशाली जानकर इंग्लैण्ड में उच्चतर अध्ययन हेतु भेजा था। स्वामीजी का श्यामजी कृष्ण वर्मा से निरन्तर पत्र व्यवहार होता रहता था। इन पत्रों के प्रकाशित होने से कई तथ्य सामने आये हैं। स्वामीजी इंग्लैण्ड की राजनैतिक स्थिति की जानकारी प्राप्त करने के साथ–साथ वर्मा से यह भी पूछना नहीं भूले कि विदेशी शासकों के भारतवासियों के प्रति कैसे विचार हैं। कालान्तर में श्यामजी कृष्ण वर्मा प्रख्यात क्रांतिकारी के रूप में प्रकट हुये। अपने इंग्लैण्ड प्रवास के समय श्यामजी ने क्रांतिकारी दल का संगठन किया और इण्डिया हाऊस की स्थापना की। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य इंग्लैण्ड में रहने वाले प्रवासी भारतीय युवकों में स्वाधीनता की अग्नि उद्दीरप्त करना था। जो छात्र श्यामजी के सम्पर्क में आकर क्रांतिकारी चेष्टाओं में संलग्न हुये उनमें विनायक दामोदर सावरकर, लाल हरदयाल और मदनलाल धींगड़ा के नाम उल्लेखनीय हैं।

जब ब्रिटिश सरकार की कड़ी कार्यवाही के कारण इंग्लैण्ड में रहकर गुप्त आतंकवादी प्रवृत्तियों का संचालन श्यामजी के लिये कठिन हो गया तो वे फ्रांस और तत्पश्चात स्विट्ज़रलैण्ड चले गये, वहाँ मैडम कामा के सहयोग से उन्होंने अपना काम जारी रखा। लंदन से उन्होंने 'इण्डियन सोशियोलोजिस्ट' नामक पत्र प्रकाशित कर क्रांति की मशाल को जलाये रखा था। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत की सशस्त्र क्रांति के पुरोधा श्यामजी कृष्ण वर्मा ही थे जो आर्यसमाज और उसके प्रवर्तक स्वामी दयानन्द से ही प्रेरणा पाकर इस क्षेत्र में अवतरित हुये थे। पश्चातवर्ती क्रांतिकारियों में तो आर्यसमाज के अनुयायी हुतात्माओं और शहीदों की एक विस्तृत पंक्ति के ही दर्शन होते हैं। यहाँ संक्षेप में ही इनका उल्लेख करना उपर्युक्त होगा।

(1) **भाई बालमुकुन्द**–सुप्रसिद्ध आर्य नेता एवं देशभक्त भाई परमानन्द के अनुज थे। लार्ड हार्डिंग बम केस (1915) में इन्हें फांसी की सजा दी गई।

(2) **पं. सोहनलाल पाठक**- गदर पार्टी में सम्मिलित होकर स्वतंत्रता हेतु प्रयत्न करने वाले

ाठकजी जिला अमृतसर के निवासी दृढ़ आर्य थे। लाला हरदयाल की प्रेरणा से ये क्रांतिकारी गतिविधियों ं सम्मिलित हुए और फांसी पर चढ़ाये गये।

(3) **पं. गेंदालाल दीखित**- मैनपुरी षड्यंत्र में पकड़े गये पं. गेंदलाल दीक्षित आगरा जिले के टसेर ग्राम के निवासी थे। इन्होंनें डी.ए.वी. स्कूल औरेया में अध्यापन कार्य किया था। कट्टर ार्यसमाजी तथा क्रांति पथ के सिपाही थे।

(4) **राम प्रसाद बिस्मिल**- आर्य संन्यासी स्वामी सोमदेवजी से प्रेरणा पाकर शाहजहाँपुर निवासी मर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल ने काकोरी षड्यंत्र केस में शहादत प्राप्त की। मृत्यु का आलिंगन करने से ुछ दिन पूर्व ही आपने कारागार की कोठरी में बैठकर अपनी आत्मकथा लिखी। इस आत्मकथन में बिस्मिल ने स्पष्ट स्वीकार किया है कि स्वदेश हेतु समर्पित होने की भावना उन्हें आर्य समाज से ही प्राप्त ई। फांसी के तख्ते पर चढ़ते समय बिस्मिल ने 'विश्वानिदेव' आदि आठ प्रार्थना मंत्रों का उच्चारण किया ा।

(5) **सरदार भगतसिंह**- हुतात्माओं के शिरोमणि सरदार भगतसिंह का तो सारा परिवार ही ार्यसमाजी था। उनके पिता सरदार किशनसिंह और चाचा सरदार अजीतसिंह सुप्रसिद्ध देशभक्त थे। रदार अजीतसिंह को तो लाला लाजपतराय के साथ ही देश निकाले का दण्ड देकर बर्मा भेज दिया गया ा। सरदार किशनसिंह के पुत्र सरदारभगतसिंह का प्रारम्भिक शिक्षण डी.ए.वी. कालेज लाहौर तथा उसके श्चात् नेशनल कॉलेज लाहौर में हुआ जहाँ भाई परमानन्द तथा पं. जयचंद्र विद्यालंकार आदि आर्यसमाजी ाध्यापकों से उन्हें देशभक्ति की दीक्षा मिली। भगतसिंह की भतीजी श्रीमती वीरेन्द्र सिंधु ने अपनी पुस्तक युगद्रष्टा भगतसिंह और उनके मृत्युंजय पुरखे' में भगतसिंह के दादा सरदार अर्जुन का उल्लेख करते हुए लखा है कि सरदार अर्जुनसिंह को ऋषि दयानन्द के दर्शन करने तथा भाषण सुनने का सौभाग्य प्रापत हुआ ा। स्वामीजी के अपने इन्हीं आर्यसमाजी संस्कारों ने भगतसिंह को क्रांति की दीक्षा दी और वे संग्राम में पनी आहुति डाल सके।

आर्य समाजी क्रांतिकारियों की इस सूची को बढ़ाया जा सकता है जिसमें डा. रोशनसिंह लाला, लराज(महात्मा हंसराजजी के पुत्र) हंसराज वायरलैस, प्रसिद्ध लेखक यशपाल (जिनकी माता ार्यसमाज की कन्या पाठशाला में अध्यापिका थी तथा जिनका प्रारम्भिक शिक्षण गुरुकुल कांगड़ी में हुआ ा), पं. जगदीशचन्द्र शास्त्री, पं. जयचन्द्र विद्यालंकार आदि के नामों में उल्लेख आवश्यक है। निष्कर्षत: ह कहा जा सकता है कि देश के स्वतंत्रता महायज्ञ में आर्यसमाज द्वारा अर्पित की गई आहुतियो की संख्या गण्य नहीं है।

ओ३म्

कृण्वन्तोविश्मार्यम्

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर

ऋषि स्मृति सम्मेलन

२७-२८-२९-३० सितम्बर २०१५

कार्यक्रम

ऋग्वेद यज्ञ

ब्रह्मा :- आचार्य सत्यानन्द जी वेदवागीश

वेदपाठी :- पं. रामनारायण शास्त्री,
श्री विमल जी शास्त्री

२७-९-२०१५ रविवार

प्रातः आसन प्राणायाम ५:३० से ६:३०
ध्वजारोहण – ७:१५
यज्ञ – ७:३० से ९:३०
यज्ञशेष(अल्पाहार) – ९:४० से १०:००
भजन प्रवचन – १०:०० से १२:००
(विषयः– मानव मात्र का उपास्य देव)
सायं दैनिक यज्ञ एवं सन्ध्या ७:०० से ७:३०
भजन प्रवचन – ७:३० से ९:३०
(विषयः– सम्मेलन का उद्देश्य)

२८-९-२०१५ सोमवार

प्रातः आसन प्राणायाम ५:३० से ६:३०
यज्ञ – ७:३० से ९:३०
यज्ञशेष(अल्पाहार) – ९:३० से १०:००
भजन प्रवचन – १०:०० से १२:००
(विषयः– मानव मात्र का कर्तव्य कर्म व धर्म)
सायं दैनिक यज्ञ एवं सन्ध्यां ७:०० से ७:३०
भजन प्रवचन – ७:३० से ९:३०
(विषयः– पारिवारिक संघठन का सूत्र)

२९-९-२०१५ मंगलवार

प्रातः आसन प्राणायाम ५:३० से ६:३०

यज्ञ – ७:३० से ८:३०

यज्ञशेष(अल्पाहार) – ८:३० से १०:००

भजन प्रवचन – १०:०० से १२:००

(विषयः– महर्षि की कार्य प्रणाली और हम)

सायं दैनिक यज्ञ एवं सन्ध्या ७:०० से ७:३०

भजन प्रवचन – ७:३० से ८:३०

(विषयः– राष्ट्रोत्थान के लिए
महर्षि आज भी प्रासंगिक)

३०-९-२०१५ बुधवार

प्रातः आसन प्राणायाम ५:३० से ६:३०

यज्ञ की पूर्णाहुति – ७:३० से ८:३०

यज्ञशेष(अल्पाहार) – ८:३० से १०:००

भजन प्रवचन – १०:०० से १२:००

(विषयः– यज्ञ का अर्थ और समाज)

मन्त्री द्वारा प्रतिवेदन :– १२:०० से १२:१५

अध्यक्ष द्वारा आभार :– १२:१५ से १२:३०

ध्वजावतरण :– १२:३०

ऋषि लंगर :– १:००

आमन्त्रित विद्वान्

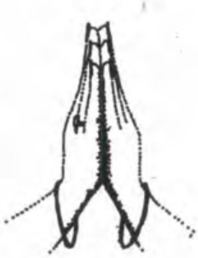

स्वामी दिव्यानन्दजी – ज्वालापुर

आचार्य सत्यानन्दजी वेदवागीश – गांधीधाम

आचार्य आर्य्य नरेशजी – हिमाचल

पण्डित राम नारायणजी शास्त्री – सिरोही

पण्डित विमलजी शास्त्री – जोधपुर

श्री नरदेवजी आर्य्य – भरतपुर

ब्रह्मचारी श्रीसत्यपाल शर्म्मा – मन्दसौर

बहन श्रीमती सरोज शर्म्मा – दिल्ली

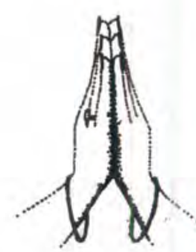

विनीत :–

महर्षि दयानन्द स्मृति भवन न्यास के सभी न्यासी एवं जोधपुर नगर के सभी आर्यजन

नोट :- बाहर से पधारने वालों के लिए भोजन एवं आवास की व्यवस्था न्यास द्वारा की गई है ।

कृपया आगमन की पूर्व सूचना 9829027481 पर देने का श्रम करावें ।

चिकित्सालय

स्वामी विरजानन्द पार्क

ओ३म्
दयानन्द सरस्वती
वैदिक साहित्य बिक्री केन्द्र

Postal Reg. Jodhpur/434/2015-17 Date Of Posting 9,10-9-2015

महर्षि दयानन्द सरस्वती यज्ञशाला निरन्तर प्रगति की ओर

सत्वाधिकारी महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास के लिए प्रकाशक व मुद्रक विजयसिंह भाटी द्वारा महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, महर्षि दयानन्द मार्ग, मोहनपुरा पुलिया के पास जोधपुर (राज.) से प्रकाशित एवं सैनिक प्रिण्टर्स, मकराणा मौहल्ला केरू हाऊस जोधपुर फोन 9829392411 से मुद्रित ।

सम्पादक फोन नं. 0291-2516655

Book-Post

श्री [illegible]न्त्री जी,
सार्वदेशिक आर्य्य [illegible]ानिधि सभा,
[illegible] हनुमान रोड़, ~~करोलबाग~~, दिल्ली